सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों
एवं शिक्षाओं
का
प्रतिपादक
मासिक

संस्थापक

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 37; अंक : 10
जनवरी 2005

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- योग साधना का लक्ष्य (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 8
- हिमालय के अमर महायोगी — पूर्णचन्द्र पन्त 10
- श्री आराध्यदेव जी के अवतारोत्सव (आश्रम समाचार)—केशवदेव उपाध्याय .. 14
- चित्त-निग्रह — श्री मगनलाल देसाई 18
- आखिर अपना ही लिया तुमने —राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू) 24
- रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी 25
- श्री प्रभु चरणों में समर्पित — राजेश कुमार सिंह 29
- योगिराज श्री गुदड़ी बाबा का प्रसंग — केशवदेव उपाध्याय 30
- आयुर्विज्ञान —दर्शनानन्द 35
- वह फरिश्ता कौन था ? —विजय सिंह 37
- स्वास्थ्य चर्चा 39

एक प्रति	: रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	: रु. 100-00
द्विवार्षिक	: रु. 190-00
आजीवन	: रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 37 अंक 10	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्यानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	जनवरी 2005

मनोऽरविन्दास दिदृक्षते त्वाम्

अज्ञातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्।।

(श्रीमद्भा० ६/११/२६)

अर्थात्

जैसे पक्षियों के पंखहीन बच्चे अपनी माँ की बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँ का दूध पीने के लिए आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतम से मिलने के लिए उत्कण्ठित रहती है—वैसे ही कमलनयन ! मेरा मन आपके दर्शन के लिए छटपटा रहा है।

अमृतकण

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।।

(कठोपनिषद १/३/१२)

सम्पूर्ण भूतों में छिपा हुआ यह ब्रह्मतत्व प्रकाशमान नहीं होता। यह तो सूक्ष्मदर्शी पुरुषों द्वारा अपनी तीव्र और सूक्ष्म बुद्धि से ही देखा जाता है। यानि योगमाया से आवृत परमेश्वर सबके प्रति प्रकाशित नहीं होता।

* * *

यस्तु द्वादशसाहस्त्रं नित्यं प्रणवमभ्यसेत्।
तस्य द्वादशभिर्मासैः परब्रह्मप्रकाशते।।

(यतिधर्म प्रकाश)

जो साधक एक वर्ष तक नित्य प्रति बारह हजार की संख्या में प्रणव ओंकार मंत्र का जप और ईश्वर स्वरूप का ध्यान करता है, उसे एक वर्ष में ही ब्रह्मदर्शन लाभ हो जाता है। परन्तु यह लाभ उत्तम अधिकारी के लिए है।

* * *

चिन्तात्र जागरोद्वेगौ तानवं मलिनांगता।
प्रलापो व्याधिरुन्मादो मोहमृत्युर्दशा दश।

(उज्ज्वल नीलमणि श्रृ० १५३)

चिन्ता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनांगता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु—ये ही विरह की दस दशायें हैं।

* * *

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।।

(श्री मद्भगवद् गीता ११/५५)

हे अर्जुन ! जो पुरुष केवल मेरे लिए ही सम्पूर्ण कर्तव्य–कर्मों को करने वाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्ति रहित है और सम्पूर्ण भूत प्राणियों में वैरभाव से रहित है वह अनन्य भक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।

* * *

योग साधना का लक्ष्य

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग शास्त्र के ग्रन्थों में योग साधना का लक्ष्य बड़ा सूक्ष्म और गहरा बताया गया है। वहाँ योग–साधना का लक्ष्य 'पुरुष प्रकृति विवेक' है। **'सत्त्व-पुरुषयोशुद्धि साम्ये कैवल्यम्'** अर्थात् जहाँ पर प्रकृति पुरुष का शुद्धि साम्य हो जाये, पुरुष (आत्मा) अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाये और बुद्धि अपने कारण मूल प्रकृति में लय हो जाये, उसे शुद्धि साम्य कहते हैं। यही 'कैवल्य' कहलाता है। केवली भाव अर्थात् अकेलापन (परम एकांत)। मैंने बुद्धि और पुरुष का सम्बन्ध बताया था। आत्मा निर्मल ज्योति है, बुद्धि जड़ है आत्मा के सामने बुद्धि आई। आत्मा की चेतना बुद्धि पर पड़ी और बुद्धि ने अपना रूप आत्मा को दिखा दिया। इससे आत्मा-बुद्धि बोधात्मा अथवा प्रत्ययानुपश्य बन गया। उदाहरण देकर मैंने समझाने का प्रयत्न किया था, जैसे कि निर्मल ज्योति के सामने लाल शीशा आ जाये ज्योति लाल दिखाई देती है, पीला शीशा आ जाये ज्योति पीली दिखाई देती है। जड़ और चेतन की गाँठ। प्रत्ययानुपश्य को खत्म करना ही योग दर्शन का लक्ष्य है। निर्बीज समाधि के अन्दर द्रष्टा पुरुष अपने स्वरूप में रहा करता है **'तदा दृष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'** निर्बीज समाधि में द्रष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित होता है वह स्वरूप प्रतिष्ठा कैसे होती है ? इसका उत्तर जैसा कि चित्शक्ति का कैवल्य में रहना। भगवान् ने गीता में आत्मा के स्वरूप को बताया है।

'अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्ले द्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।'

यह अच्छेद्य है, अर्थात् इसको काटा नहीं जा सकता अदाह्योऽयम् 'इसे जलाया नहीं जा सकता, अक्लेद्यो' इसे जल गीला नहीं कर सकता, अशोष्यः' इसे वायु सुखा नहीं सकती। यह आत्मा नित्य है, सर्वव्यापी है, एक जैसे रहने वाला है, अचल और सनातन है। समाधि के अतिरिक्त अर्थात् व्युत्थान काल में आत्मा **'वृत्ति सारुप्यमितरत्र'** के अनुसार वृत्ति सारूप्य' अवस्था को प्राप्त हो जाती है। **'सदृशम् चेष्टते स्वस्याः प्रकृमेर्ज्ञनवानपि'** ज्ञानी लोग भी अपने स्वभाव के अनुसार चेष्टायें किया करते हैं। सृष्टि में गुण विस्तार के कारण भिन्नता है। भगवान् राम का स्वभाव दूसरे प्रकार का है, भगवान कृष्ण का स्वभाव दूसरे प्रकार का है, भगवान शिव का स्वभाव कुछ और प्रकार का है। दुर्वासा ऋषि का स्वभाव कुछ और प्रकार का है–उनका क्रोधी होना प्रख्यात है। ये सब उनका आत्मिक विकार नहीं है, बुद्धि के धर्म हैं जिसमें पर और

शाप दिया करते हैं। यह आत्मा का स्वरूप नहीं है। मैंने तुम्हें चित्त की पाँच प्रकार की भूमियाँ कई बार समझाई हैं। इनमें सबसे पहले 'मूढ़ावस्था' वाले प्राणी होते हैं। ये तमोगुण प्रधान प्राणी होते हैं। मनुष्य में ऐसे प्राणी दूसरों को कष्ट देते हैं लड़ाई झगड़ा करते हैं, अथवा 'प्रमादालस्य एवं निद्रा में ही पड़े रहते हैं। दूसरे होते हैं 'क्षिप्तावस्था' के प्राणी ऐसे प्राणि.. का चित्त पूर्णतया रजोगुण से व्याप्त रहता है। इनकी भी पारमार्थिक प्रकृति नहीं होती है। इन लोगों का ईश्वर में, सिद्धों में, लोक परलोक में विश्वास नहीं होता। **'यावत् जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतम् पिबेत्'** का इनका सिद्धान्त होता है। इन्द्रिय सुख में लगे रहते हैं अन्याय से बने अथवा किसी की हत्या करके भी धन मिलता हो तो उस में भी ऐसे लोग पीछे नहीं रहते। तीसरी भूमि के प्राणी 'विक्षिप्तावस्था' के होते हैं। **''क्षिप्ता विशिष्टम् विक्षिपत्म्''** क्षिप्तावस्था से जो श्रेष्ठ होते हैं वे विक्षिप्तावस्था वाले होते हैं। इनमें सतोगुण प्रधान रहता है, रजोगुणत्तमोगुण गौण रहा करते हैं। सतोगुण प्रधान होने से इस श्रेणी के प्राणी श्रद्धालु हुआ करते हैं। **'श्रद्धा चेतसः सम्प्रसादः'** अर्थात् चित्त की प्रसन्नता ही श्रद्धा है। श्रद्धा, योगी की माँ की तरह रक्षा करती है। श्रद्धा के उदय होने पर सतोगुण का विकास होगा। धीरे-धीरे उसमें दैवी सम्पत्ति आ जायेगी। भगवान् ने गीता में दैवी सम्पत्ति का फल बताया है **'दैवी सम्पद्विमोक्षाय'** अर्थात् दैवी सम्पत्ति मुक्ति का कारण बन जाती है।

विक्षिप्तावस्था वाले मनुष्य में श्रद्धा होती है, इस कारण से परमार्थ में उनकी प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। चौथी श्रेणी के लोग **'एकाग्रावस्था'** वाले होते हैं। इनमें सतोगुण का पूरा-पूरा विकास हो जाता है। यहीं से योग प्रारम्भ होता है। इस से पहले की तीन अवस्थाओं में योग नही माना गया। इस अवस्था के उदय होने पर मनुष्य अन्तर्मुखी बन जाता है। रूहानी दृश्य सामने आते हैं। **'ईशाद्याः सकलाः देवाः दृश्यन्ते परमात्मनि'** अर्थात् उस परम तेज ईश्वर के अन्दर सभी देवी देवता दिखाई दिया करते हैं। इससे आगे **निरोधावस्था** आती है। इस से योगी की **निर्बीज समाधि** होती है। निर्बीज में माया का बीज समाप्त हो जाता है। तब योगी अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। मैंने तुम्हें पिछले व्याख्यानों में यह भली प्रकार से समझाया था कि योगी दो प्रकार के होते हैं। **'भव प्रत्यय'** वाले तथा दूसरे **'उपाय प्रत्यय'** वाले। **''भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्''** अर्थात् विदेह कोटि के देवता तथा प्रकृति लीन योगियों को भव प्रत्यय होता है। भव प्रत्यय वाले को जन्म से ही योग की प्रतीति होती है। भव प्रत्यय वाले यह समझते हैं कि हमें कैवल्य की प्राप्ति हो गई है। **'कैवल्य पदमिव अनुभवन्तः'** अर्थात् कैवल्य पद का अनुभव सा करते हैं। किन्तु उनहें अभी कैवल्य प्राप्त नही होता क्योंकि तब तक उनके पास अनुभव करने वाला मन और बुद्धि रहते हैं। अतः चित्त अधिकार अर्थात् बीज वाला है। अधिकार में पुनरावर्तन हुआ करता है। विदेह देवता देह धर्म से आगे हो गये होते हैं ये ब्रह्मलोक के जीव हुआ करते हैं। उनको तो संकल्प से ही ज्ञानेन्द्रियाँ हो जाती हैं। **'जिघ्रन् नासिका**

भवति' यदि वे सूँघना चाहे तो नासिका अपने आप हो जाती है। **पश्यन् चक्षुर्भवति** अर्थात् देखना चाहें तो आँखें ही आँखें हो जाती हैं। **'स्पर्शन्त्वग् भवति'** यदि किसी को छूना चाहें तो त्वक् हो जाती है अर्थात् दूर दर्शन दूर श्रवण की योग्यता इनमें स्वाभाविक हुआ करती है। संकल्प से ही आँख, कान, नासिका आदि हो जाते हैं। मनुष्य की इन्द्रियों की शक्ति सीमित है। भगवान ने गीता में योगियों के लिये साधना क्रम अथवा कोर्स इस प्रकार बताया है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुः इन्द्रियेभ्यो परंमनः।
मनसस्तु पराबुद्धिः यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

अर्थात् पहले योगी इन्द्रियों का साक्षात्कार करे इसके पश्चात् मन का साक्षात्कार करे, फिर बुद्धि का साक्षात्कार करे और बुद्धि से परे उस आत्मा का साक्षात्कार करे। इन्द्रियाँ हमारी पूरी शक्ति वाली नहीं हैं। वस्तुतः तो इनका दायरा बहुत ज्यादा नहीं है। लेकिन, योग–साधना से ही इसके दायरे को विस्तृत बनाया जाता है। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ कहाँ से उत्पन्न हुई, इसे जानो। देखो ! घ्राणेन्द्रिय का सम्बन्ध गंध तन्मात्र से है। **'तत्र गन्धवती पृथ्वी'** अर्थात् पृथ्वी में गन्ध है। जब योगी योग साधना से घ्राणेन्द्रिय का साक्षात्कार करेगा तो जहाँ–जहाँ तक पृथ्वी का विस्तार है, जहाँ–जहाँ तक गन्ध तन्मात्र है वहाँ तक के सुगन्ध या दुर्गन्ध को योगी ग्रहण कर ले, तब समझ लेना चाहिये कि घ्राणेन्द्रिय का साक्षात्कार हो गया। साधारण मनुष्य जीभ से खट्टे–मीठे स्वाद का ही अनुभव करता है। किन्तु, साधना से जब हम रसनेन्द्रिय का साक्षात्कार करेंगे, तो जहाँ तक जल है, क्योंकि जीभ की उत्पत्ति जल से है, चाहे वह व्यक्त रूप में हो अथवा अव्यक्त रूप में, वहाँ तक के सारे रस का साक्षात्कार हो जायेगा। इसी प्रकार आँखों का सम्बन्ध अग्नि से है। रूप तन्मात्र अग्नि का कारण है। अग्नि जहाँ तक है वहाँ तक आँखों से देख सकता है। तुम यह जानते हो कि अग्नि सब जगह है, जल में भी अग्नि है पत्थर में दीवार में अग्नि सर्वत्र विद्यमान है। जब योगी नेत्रेन्द्रिय का साक्षात्कार कर लेता है तो उसे हजारों मील दूर की दिखाई दे जाती है अथवा जहाँ तक अग्नि का दायरा है वहाँ तक सभी कुछ देख लिया करता है। इसी प्रकार से त्वग् से दिव्य स्पर्श का अनुभव करता है। शब्द तन्मात्र कर्णेन्द्रिय का विषय है। आकाश जहाँ तक है ब्रह्माण्ड में जितने भी शब्द हैं, उन शब्दों को, कर्णेन्द्रिय के साक्षात्कार हो जाने पर सुन सकते हैं। मैं अपने एक गुरू भाई को जानता हूँ, जिन्होंने ऋषिकेश बैठे–बैठे ही बरसाने में हो रही घटना को देख लिया था और दण्ड भी दिया था। श्री प्रभु जी के चरणों में ऐसे अलौकिक चरित्र हम लोग दिन रात देख सकते थे। उनके कई बच्चों में भी ऊँची–ऊँची स्थिति वाले व सामर्थ्य वाले थे। अखिलात्मा भगवान ने गीता में युक्त योगी के लक्षण बताएँ हैं–

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः।।

ज्ञान तृप्तात्मा वह होता है, जिसने प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझ कर प्रकृति पर

हुकूमत प्राप्त कर ली हो और **विज्ञानतृप्तात्मा** वह होता है जिसने पूर्ण रूप से आत्म साक्षात्कार कर लिया हो। मिट्टी पत्थर सोना जिसके लिये समान है, वह युक्त योगी कहा गया है। आनन्द कन्द श्री प्रभु जी नैपाल हिमालय से आकर अपने ध्यानी बच्चों को, ध्यान में बैठाया करते थे। उनका पहला काम था कि वे ध्यान में पहले भूमण्डल के सारे दृश्यों को दिखाया करते थे, पाँच भौतिक दृश्य–अग्नेय समुद्र आदि–आदि दिखाने के साथ–साथ गन्धर्व पितर–स्वर्गादि लोकों को दिखाते थे। तत्पश्चात् उनमें से निकाल कर उसे आत्मदर्शन की ओर ले जाया करते थे। यह प्रभु जी का ध्यान अभ्यास कराने का क्रम था। हमारे भी ध्यानाभ्यासी बच्चे ऐसे हुये हैं। मैं तुम्हें रमण गिरी साधु के विषय में बताया करता हूँ। वह सन्यासी था। हमारे पास आकर योग दीक्षा ली। भगवान शंकर की आराधना पहले करता था। श्री प्रभु जी की कृपा से ध्यान स्थिति ऊँची बढ़ गई। वह भी लोक लोकान्तर में जाया करता था। स्वर्ग में इन्द्र सभा में जाया करता था। हमारे आश्रम में आने जाने वाले साधकों में ही एक नत्थू राम काका थे। अच्छे साधक थे। एक बार राम लीला के दिनों में नत्थू राम ने उस महात्मा से कहा–चलो ! नागे ! तुम्हें राम लीला दिखा कर लायें। महात्मा कहने लगा– काका जी ! तुम राम लीला देखने जाओ और मैं तुम्हें देखूँगा। तुम क्या–क्या करते हो और कहाँ जाते हो। ऐसा कह कर वह ध्यान में बैठ गया और सूक्ष्म शरीर से उसके साथ हो लिया। सारा दृश्य देखता रहा। जब नत्थू राम वापिस लौटे तो रमणी गिरी कहने लगा– काका जी बताऊँ आश्रम से जाने के बाद तुम कहाँ–कहाँ गये और क्या–क्या किया। उन्होंने कहा बता ! हमने क्या–क्या किया ?' महात्मा ने कहा– सबसे पहले आश्रम से बाहर निकलने के बाद तुमने एक बीड़ी पी ! उससे आगे तुम्हें ठा. घमण्डी सिंह मिल गया, तुम उसके साथ–साथ बाजार गये। आपस में मजाक करते हुये जा रहे थे। उसके बाद एत्मादपुर पहुँच कर राम लीला देखने लगे। तुम्हें भीड़ के कारण खड़े होने को जगह नहीं मिल रही थी, इसलिये तुम ला. भगवान दास की दुकान पर चढ़ गये। राम लक्ष्मण की बारात निकल रही थी। इस में लक्ष्मण जी नीलवर्ण के थे और राम जी गौर–वर्ण के थे। इस तरह से राम की बारात देखने के बाद तुम फिर वापिस आये ! आश्रम से दूर खोरे (सीमा) के पास तुमने बीड़ी पीकर लघुशंका की और इस तरह से आश्रम वापिस आ रहे हो। नत्थू राम ने मान ली कि वास्तव में बात ज्यों की त्यों सत्य है। वह साधु स्वर्ग के दृश्यों को देखने लगा था। मैंने तुम्हें पहले भी बताया हुआ है जब योगी सम्प्रज्ञात की दूसरी श्रेणी में पहुँचता है, तब उसके मार्ग में देवता अन्तराय पैदा कर दिया करते हैं, तब उसे भ्रान्ति दर्शन होने लगता है। उसके साथ भी यही हुआ देवताओं ने उससे कहा कि तुम वृन्दावन में कुसुम सरोवर पर आ जाना, वहाँ तुम्हें एक देव कन्या मिलेगी।' वह चुपचाप आश्रम से बिना किसी को बताये वृन्दावन चला गया, वहाँ तीन दिन व तीन रात तक भूखा प्यासा पड़ा रहा। किन्तु कहीं देव कन्या नहीं आयी। हाँ वहीं की किसी लड़की से सम्पर्क हो गया और भ्रष्ट हो गया। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि

उत्थान तो होता है, किन्तु साधक सङ्गदोष से बचा रहे। **'निर्मानमोह जित सङ्गदोषाः'** यह भगवान का साधक के लिये संकेत है। यदि साधक जितेन्द्रिय नहीं है, तो शक्ति उसका साथ छोड़ देती है। शरीर में वीर्य ही ब्रह्म है। ब्रह्मचर्य का फल योग दर्शन में लिखा है कि **ब्रह्मचारी विनयेषु शक्तिमाधातुं समर्थो भवति** अर्थात् एक ब्रह्मचारी अपने शिष्यों में शक्ति पात कर सकता है। किन्तु जो इन्द्रियलोलुप है, वह शक्ति पात नहीं कर सकता। अस्तु ! मैं तुम्हें भव प्रत्यय वाले योगियों के विषय में बता रहा था। विदेह देवता और प्रकृतिलीन वे होते हैं जो गन्धतन्मात्र में लय हो जाते हैं, रूप तन्मात्र में लय हो जाते हैं, रस तन्मात्र में लय हो जाये या बुद्धि के सात्विक महाभावों में लय हो जायें यह भी प्रकृतिलयता है। वह बुद्धि के धर्मों में लय हो जाता है। अपने इष्टदेव को सर्वत्र देखता है। अन्त में समझ लेता है। **'प्राप्तं प्रापणीयं, छिन्नः श्लिष्टपर्वः भव संक्रमः'** अर्थात् जो प्राप्त करनी चाहिये वह मैंने प्राप्त कर लिया है। पीढ़ी दर पीढ़ी स्थित इस जन्म चक्र को मैंने काट दिया है। किन्तु योगियों में एक विशेष बात यह होती है कि वह किसी से कुछ माँगते नहीं हैं। वे लोग अपने अन्दर शक्ति पैदा करते हैं, जिनसे वरदान व शक्ति लेते हैं वह भी योगी ही होते हैं। साधना करते–करते ये लोग भी शक्ति सम्पन्न हो जाते हैं। सिद्धता को प्राप्त हो जायेंगे। 'ईश्वर' को महासिद्ध कहा जाता है। वह अनादिसिद्ध है। क्लेश कर्म विपाक एवं आशय के चक्कर में जो कभी आया ही नहीं, उसे ईश्वर कहते हैं। दूसरे योगी भी साधना करते–करते क्लेश कर्म से छूट जाते हैं, निर्बीज समाधि तभी होगी जब वे क्लेश बंधन से पूर्ण रूप से टूट जायेंगे। योगी क्लेश बंधन से छूटने के लिये ही सारा पुरूषार्थ करता है। योग ही ऐसी विद्या है जिसके जान लेने पर सभी कुछ जाना जा सकता है।

'यस्मिन् ज्ञाते ज्ञातंभवति'

सर्वज्ञता एवं सर्वव्यापकता योग से ही संभव है। इसलिये तुम सब अपने आप को योग ध्यान परायण बनाओ। जब तक शरीर में रजोगुण, तमोगुण रहेगा तब तक मृत्यु के समय प्राण का घर्षण होगा ही होगा। उस घर्षण के दुःख में न कृष्ण चन्द्र याद आयेंगे, न कोई और याद रहता है। उस समय प्राणों के घर्षण के समय शुभ चिन्तन नहीं होगा। अशुभ चिन्तन से **'अधो गच्छन्ति तामसाः'** के अनुसार निम्न योनियों में प्राणी चला जाता है। किन्तु जो ध्यान योगी हैं उनमें सतोगुण की वृद्धि हो जाने के कारण, शुभ्र प्रकाश में शरीर छोड़ते हैं, सद् गति को पाते हैं। इसलिये अपने को योग ध्यान परायण बनाओ। जो इस मार्ग में बढ़ेंगे, वे सर्व शक्तिमान उनकी अवश्य सहायता करेंगे। बार–बार आशीर्वाद।

❊ ❊ ❊

योग विद्या से ही आत्म विकास संभव है।

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

'योग' आध्यात्मिक ग्रन्थों में एक अति व्यापक शब्द है। सभी मत व सम्प्रदाय के मानने वाले आचार्यों ने इसे माना है। भारतीय दर्शन का मूलाधार योग है जिस प्रकार से प्राण के बिना शरीर का अस्तित्व नहीं रह सकता है इसी प्रकार से योग अध्यात्म का प्राण है। योग को ही अध्यात्म विद्या, ब्रह्म विद्या, परा विद्या कहा जाता है। भगवान श्री कृष्ण चन्द्र के मुखारविन्द से निःसृत अमृत-वाणी गीता योग का ही गुणगान करती है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने इस अमर विद्या का अवलम्ब लेकर तत्वज्ञान को पाया है। अर्वाचीन काल के योगियों ने इसे समझा, माना और जीवन में इसे आत्मसात् करके महानता के शिखर को पाया है। स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी योगानन्द परमहंस प्रभृति आधुनिक काल के योगियों ने इस अमर विद्या का विश्व में प्रचार करके भारत को विश्वगुरू के पद पर प्रतिष्ठित किया है।

योग क्रिया का नाम नहीं है यह एक अविनाशी विद्या है। श्री मद्भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ में भगवान् ने इसे 'अव्यय योग' नाम से अभिहित किया है। सृष्टि के आदि से ही यह अमर विद्या परम्परागत रूप से चली आ रही है। भगवान ने सर्व प्रथम सूर्य को उपदेश दिया है। सूर्य ने मनु को तथा मनु ने इसे इक्ष्वाकु आदि राजाओं को दिया है। मानव का धर्म योग ही है जिसने सम्पूर्णतया इसे जीवन में अंगीकार किया उसी का जीवन धन्य हुआ है। योग से ही मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त हुआ करता है। वैसे तो शास्त्रों में आता है अमृत को पीकर देवता अमर हो जाते हैं किन्तु अमर होने का तात्पर्य दीर्घजीवी होने से है। गीता के अनुसार पुण्य के क्षीण हो जाने पर मर्त्यलोक में उन्हें भी आना पड़ता है। इसलिये यदि कोई वस्तु जीव को अमर कर सकती है वह योग ही है।

जीव को पावन बनाने वाली इससे बढ़कर कोई और विद्या नहीं है न ही योग से बढ़कर संसार में कोई बल या शक्ति है। विद्याओं में अध्यात्म विद्या को सर्वश्रेष्ठ माना गया है वह योग ही है। आत्मोत्थान का अचूक उपाय जैसा योग है अन्य कोई नहीं है। इस उपाय से मनुष्य निरन्तर विकास की ओर चलकर निश्चित रूप से अपने परम लक्ष्य तक पहुँच जाता है।

योग को जीवन में किस प्रकार उतारा जाये इसके अनेक साधन हैं किसी एक साधन का अवलम्ब लेकर साधक अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकता है। महर्षि पतञ्जलि जी ने योग-दर्शन में 'समाधिः वैयोगः' कहकर समाधि को ही योग कहा है। मन की स्थिति को समत्व में रखते हुये किस प्रकार साधक आगे बढ़ सकता है इस बात का संकेत देते हुये भगवान् कृष्णचन्द्र जी ने

फलासक्ति को छोड़कर योगस्थ होकर कर्म साधना करते रहने का उपदेश दिया है जिसे कर्मयोग की साधना मानते हैं। सांसारिक कार्यों को करते रहने का नाम कर्मयोग नहीं है। वे कर्म जो योग की सिद्धि (लक्ष्य) के लिये सहायक हो वही कर्मयोग है। दूसरे शब्दों में योग के लिये कर्म करना सांसारिक कर्मबन्धन के विच्छेद का उपाय कर्म योग है कर्म योग की मुख्य साधना ध्यान योग है। ध्यान योग से ही कर्मफल का त्याग हो सकता है जिससे जीव को अखण्ड शान्ति मिला करती है।

योग साधना से साधक अपनी बिखरी हुई चेतना शक्ति को एकत्रित करते हुये लक्ष्य की ओर बढ़ता है। आत्मज्ञान का योग ही मुख्य उपाय है। इसी से ऋतम्भरा ज्ञान का उदय होता है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने ऋतम्भरा ज्ञान को अपने अन्दर प्रकट किया इसी से वे मन्त्र द्रष्टा तथा तत्ववेत्ता हो गये। **ऋतम्भरा ज्ञान विवेक ख्याति** को देने वाला होता है। इसके उदय होने पर भी योगी के सम्पूर्ण कर्मदग्ध बीज हो जाते हैं और योगी जन्म मरण के आवर्तन से मुक्त हो जाता है। इसलिये मनुष्य को योगी बनना चाहिये यही आज्ञा अर्जुन के माध्यम से भगवान् ने सब को दी है।

योग ज्ञान भी है और विज्ञान भी। युक्त योगी ज्ञान विज्ञान से युक्त होता है। योग को भगवान् ने गीता में 'प्रत्यक्षावगम' अर्थात् प्रत्यक्षज्ञान अथवा अपरोक्ष ज्ञान की संज्ञा दी है। योग के बिना मनुष्य का जीवन अंधकार में ही है। अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने की विधा ही योग है। योग साधना से जहाँ स्थूल शरीर के मल धुलते हैं वहीं पर ध्यान योग की साधना से सूक्ष्म शरीर का –चित्त के मलों का शोधन होता है। चित्त के राग–द्वेषादि कल्मष योग से ही दूर हो सकते हैं। भवरोग अर्थात् जन्म मरण रूपी रोग का योग ही परमौषध है। दीर्घकाल तक आदरपूर्वक किया गया योग सिद्ध होता है। योग शास्त्रों में साधना की अनेक विधियों का वर्णन है इससे साधक भ्रमित भी हो सकता है इसलिये साधक को योगी गुरू के शरण में जाकर ही योगविधि को सीखना चाहिये और गुरुदेव के निर्देशानुसार ही साधना में लगना चाहिये। प्रसुप्त अन्तर्शक्ति को विकसित किये बिना कोई भी आत्म–दर्शन का अधिकारी नहीं होता। कर्मबन्धन क्षीण किये बिना आत्मस्थिति नहीं बनती। आत्मनिष्ठ योगी को कर्मबन्धन में नहीं डालते। **'आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जयः'** आत्मवान को कर्मबन्धन नहीं होता है। पुरातनकाल से लेकर आजतक जितने भी योग विभूतियाँ हुई हैं उन सभी ने योगमार्ग का अवलम्ब लेकर ही चरमोत्कर्ष को पाया है।

मनुष्य के जीवन में धारण करने योग्य वस्तु योग ही है। इसी से मनुष्य सब प्रकार से कृतकृत्य हो जाता है। जीव का परम कल्याण योग से ही है इसलिये विवेकी व्यक्ति को योगमार्ग पर चलकर अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेना चाहिये। भारत भूमि योगियों की भूमि है मनुष्य को योगीजन यहाँ सहज में ही मिल जाते हैं। यहाँ का वातावरण योग साधना के अनुकूल है। पुण्यशील जीव स्वर्ग को पाकर बहुकाल तक वहाँ सुखोपभोग करते हैं पुनः भारत में जन्म लेकर मोक्ष के लिये साधना की कामना करते हैं। इसलिये यहाँ जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इस सुअवसर को नहीं गँवाना चाहिये।

❋ ❋ ❋

हिमालय के अमर महायोगी

पूर्णचन्द्र पन्त

हरिद्वार में भाई से भेंट और उनके आग्रह पर उनके साथ घर लौटना

प्रभु जी वहाँ से सहारनपुर होते हुए हरिद्वार पहुँचे। उन दिनों वहाँ कुम्भ मेला लगा हुआ था और देश के कोने–कोने से लाखों की संख्या में श्रद्धालु लोग कुम्भ के पावन पर्व पर स्नान करने के लिये वहाँ एकत्रित हो रहे थे। जिनमें सैकड़ों साधु मंडलियाँ भी थीं। संयोगवश प्रभुजी के ज्येष्ठ भ्राता पं. तीर्थराम जी भी अपने कुटुम्बीजनों को साथ लेकर कुम्भ पर्व से एक दिन पूर्व हरिद्वार पहुँच गये। मेले में एकत्रित साधुओं की भीड़ देखकर उन्हें अपने भाई की स्मृति हो आई और वे उनसे मिलने को अधीर हो गये, जो भी युवा साधु नजर आता वे उसे गौर से देखकर पहचानने की कोशिश करते कि कहीं यही तो मेरा भाई नहीं है। उन्होंने लोगों को आपस में बातें करते हुए सुना कि इस मेले में २५ २६ वर्ष की आयु का एक सिद्ध महात्मा आया हुआ है, इसके चेहरे पर अपार तेज झलकता है और वह लोगों को भूत भविष्य की बातें सत्य–सत्य बतला देता है। तीर्थराम जी को आशंका हुई की कहीं वही तो मेरा भाई नहीं है। अतः जिज्ञासावश उन्होंने उनसे महात्मा के रंग–रूप और डीलडौल के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि वह लम्बे कद का गौर वर्ण जटाजूट महात्मा है, एक कोपीन के अतिरिक्त कोई वस्त्र धारण नही करता। यह सुनकर तीर्थराम जी को विश्वास हो गया कि वह मेरा भाई रामलाल ही है। तब वे उत्सुकतावश साधु–महात्माओं के डेरों के आसपास जाकर ढूँढने लगे और सारे मेले में उन्हें ढूँढना आरम्भ कर दिया। इतने में रात्रि भी हो गई। अगले दिन कुटुम्बी जनों के साथ पर्व स्नान किया। स्नानोपरान्त वे मेला क्षेत्र में घूम–घूमकर पुनः अपने भाई की खोज करने लगे। दो–तीन घंटे पश्चात उन्हें भीड़ में सामने से आते हुए प्रभु रामलाल जी दिखाई दिये। वे शीघ्रता से उनके पास पहुँचकर ज्योंही उनसे बात करने लगे तो देखते ही देखते प्रभु जी अन्तर्धान हो गये। तीर्थराम जी को इस बात का बड़ा दुःख हुआ। वे पुनः भाई की खोज में जल्दी–जल्दी आगे बढ़ने लगे और मन ही मन अपने इष्टदेव से प्रार्थना करने लगे– हे प्रभो ! ऐसी कृपा कीजिये कि मुझे मेरा भाई मिल जाये। कुछ ही मिनटों बाद उन्हें प्रभु रामलाल जी अपने साथ–साथ चलते दिखाई दिये। वे रुककर उन्हें पहचानने की चेष्टा करने लगे तो प्रभु जी एकदम एक बटुक (छोटे से ब्रह्मचारी) के रूप में परिवर्तित हो गये। अगले ही क्षण उन्होंने अपने उस बटुक रूप को हटा कर विशाल शरीर धारण कर लिया और आकाश में मन्द–मन्द मुस्कराते हुए दृष्टिगोचर होने लगे। यह सब देखकर तीर्थराम जी भ्रमित हो गये और इसे माया समझकर निराश होते हुए भी भाई की खोज में इधर–उधर घूमते रहे। प्रभु रामलाल जी अपना रूप बदलकर उनके साथ–साथ ही चल रहे थे और मन ही मन आनन्दित हो रहे थे। जब तीर्थराम जी बहुत अधिक परेशान हो गये तो दयासागर श्री प्रभु जी अपने वास्तविक रूप में

उनके सामने प्रकट हो गये। उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता को प्रणाम किया और तीर्थराम जी ने भी बड़े प्यार से उन्हें कंठ से लगा लिया। काफी समय तक उन दोनों में आत्मीयतापूर्ण बातें होती रही और फिर तीर्थराम जी ने अपने प्रिय भाई से घर चलने का आग्रह किया। चूँकि वे अपने ज्येष्ठ भ्राता का पिता के तुल्य आदर करते थे, अतः उनकी आज्ञा को वे टाल नहीं सके, रात्रि को उन्होंने अपने भाई और कुटुम्बी जनों के साथ ही विश्राम किया। अगले दिन प्रातः पं. तीर्थराम जी ने स्नान से पूर्व नाई बुलाकर प्रभु रामलाल जी का विधिपूर्वक क्षौर कर्म करवा दिया, जटायें कटवा दी तथा स्नान के पश्चात उन्हें नये वस्त्र (सफेद धोती–कुर्त्ता) धारण करा दिया। इस प्रकार पंडित वेश में वे उन्हें अपने साथ घर ले गये।

योगप्रचार कार्य का शुभारम्भ

प्रभु जी को अचानक घर में आया देखकर उनकी पुण्यशालिनी परम तपस्विनी धर्मपत्नी देवी सुभद्रा जी तथा समस्त कुटुम्बी जन आनन्द विभोर हो गये। पड़ोस के सभी लोग रामलाल जी से मिलने तथा माता सुभद्रा देवी और तीर्थराम जी को बधाई देने उनके घर पर एकत्रित होने लगे। ३–४ दिन तक वहाँ इसी प्रकार का वातावाण बना रहा। कुछ दिन बाद प्रभु जी पंडित वेश में अपने को छिपाकर विरक्त भाव से घर में रहते हुए ही जनकल्याण करने लगे। उनकी ज्योतिष विद्या में निपुणता का तो लोगों को पहले से ही ज्ञान था। धीरे–धीरे उन्हें इस बात का भी पता चल गया कि वे जड़ी–बूटियों के द्वारा हर प्रकार के रोगों का भी ईलाज करते हैं। और अपने आशीर्वाद से लोगों की हर प्रकार की मनोकामना पूर्ण कर देते हैं। अतः अब उनके घर में बड़ी संख्या में लोग आने लगे। कुछ लोग जन्मपत्री दिखाने, कुछ रोगों का उपचार कराने और कुछ उनका आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु आने लगे। जो भी उनके पास आता उसकी मनोकामना अवश्य पूर्ण हो जाया करती थी। तब लोगों की बढ़ती हुई भीड़ को देखकर प्रभु जी ने एक कोठी किराये पर ले ली और वहाँ जोर–शोर से योग–प्रचार करने लगे। उन्होंने वहाँ तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये–

(१) साध्य–असाध्य सभी प्रकार के रोगों की सरल योग क्रियाओं द्वारा चिकित्सा और उच्चतर अधिकारियों को कायाकल्प कराना।

(२) सभी प्रकार की गुप्त योगक्रियाओं (प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा और यौगिक षटकर्म आदि) को सरलता से सिखाना।

(३) तीव्र शक्तिपात द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करना और समाधि की प्राप्ति कराना।

इसके साथ ही उन्होंने 'जीवन तत्व साधन' नामक नौ सरल आसनों का आविष्कार और प्रचार किया। ये आसन आबल–वृद्ध, स्त्री–पुरुष सबके लिये समान रूप से लाभदायक है और सभी इन आसनों को कर सकते हैं। आपने इन आसनों तथा कतिपय अन्य योग–क्रियाओं द्वारा

जीवन से निराश असंख्य रोगियों को नया जीवन प्रदान किया।

जीवन तत्व साधन एवं यौगिक षट कर्म का वर्णन आगे देखिये।

यौगिक चिकित्सा के साथ–साथ आपने संसार–प्रवाह में बह रहे सैकड़ों स्त्री–पुरूषों एवं सैकड़ों पतित जनों को पवित्र योगमार्ग में चलाया और शक्तिपात दीक्षा द्वारा उन्हें ध्यान की उच्चतम स्थितियां प्रदान की।

धीरे–धीरे प्रभु जी की पवित्र कीर्ति दूर–दूर तक फैल गई और उन–उन स्थानों से बड़ी संख्या में लोग अपने संकट निवारण के लिये उनकी शरण में आने लगे। इस प्रकार प्रचार क्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ता गया। अब उन्होंने लाहौर, सहारनपुर, हरिद्वार, ऋषिकेश आदि नगरों में भी जा–जाकर योग की गंगा बहा दी और धूमधाम से योग प्रचार करने लगे। कालान्तर में श्री प्रभु जी ने रेलवे रोड ऋषिकेश में योग साधन आश्रम नाम से एक भव्य आश्रम की स्थापना कर दी और फिर कुछ वर्ष बाद अमृतसर के निकट छिहरटा नामक स्थान में भी एक आश्रम स्थापित कर दिया।

शक्तिपात दीक्षायें (स्वामी मुलखराज जी की अद्भुत योगदीक्षा)

सन् १९१६ की घटना है। एक दिन प्रभु जब अमृतसर में अपने कुछ भक्तों के साथ हाल बाजार से गुजर रहे थे। वहाँ उस समय कांग्रेस पार्टी की ओर से अंग्रेज सरकार के विरूद्ध जबरदस्त प्रदर्शन किया जा रहा था। प्रदर्शन में एक टोली का नेतृत्व मुलखराज जी कर रहे थे। उस समय उनकी आयु लगभग २५ वर्ष की थी। वे बड़े जोश के साथ नारे लगा रहे थे। प्रभुजी ने बड़े गौर से उनकी ओर देखा और उन्हें ऐसे लगा जैसे कि वह उनका अपना ही बच्चा हो। उन्होंने उस युवक के निकट जाकर बड़े प्यार से पूछा–बेटा ! तुम्हारा क्या नाम है और कहाँ रहते हो ? मुलखराज जी चिढ़कर प्रभुजी को अपमानित करते हुए बोले–अरे देश के गद्दारों ! पहले इन विदेशी कपड़ों को आग लगाओ, फिर हमसे बात करना। यह सुनकर प्रभुजी कुछ नही बोले, मुस्कराते हुए चुपचाप आगे चले गये। वे उस समय रेशमी कपड़े पहने हुए थे। भाई का कटड़ा स्थित अपने आश्रम में पहुँचकर भी वे बार–बार मुस्कराते रहे। यह देखकर किसी सत्संगी ने पूछ लिया–प्रभो ! आपके इस प्रकार मुस्कराने का क्या कारण है? कृपा करके हमें भी यह रहस्य बता दीजिये।

प्रभु जी प्रसन्न मुद्रा में बोले–भाई ! क्या बतायें आज हमें पिछले जन्मों का बिछुड़ा हुआ अपना एक बच्चा मिला है। हमने उसे बुलाया भी किन्तु उसने हमसे बात करने से मना कर दिया। अब वह आज से आठवें दिन स्वंय ही हमारे पास आयेगा। इसी बात पर विचार करते हुए ही हमें हंसी आ रही है। वैसे उसका हमसे मिलने का संस्कार आठ वर्ष बाद का था। किन्तु उस पर हमारी दृष्टि पड़ गई है अतः उसका आठ वर्ष का संस्कार काल अब आठ दिन में ही पूरा हो जायेगा। प्रभुजी के कथनानुसार ठीक आठवें दिन ६ जुलाई १९१६ को मुलखराज जी

अपनी जन्मपत्री लेकर वहाँ पहुँच गये और प्रभु जी को अपनी जन्मपत्री दिखाते हुए अपना भविष्य पूछने लगे।

इस पर प्रभु जी जन्मपत्री अपने हाथ में लेकर देखने का अभिनय करते हुए बोले–बेटा ! तुम्हारी जन्मपत्री बता रही है कि तुम आज ही से इसी समय से ही योगी बन जाओगे और तुम्हें सब प्रकार की योगसिद्धियां प्राप्त हो जायेंगी मुलखराज जी ने सोचा कि उस दिन मैंने इनका अनादर किया था, शायद पंडित जी उसी बात का बदला ले रहें हैं और मुझे बेवकूफ बना रहे हैं। वे बोले–पंडित जी ! आप इस प्रकार मेरा मजाक न करें, यदि आप मेरी जन्मपत्री नहीं देखना चाहते हो तो इसे मुझे लौटा दें। प्रभु जी बड़े प्यार से बोले–बेटा ! इसे तुम मजाक मत समझो। मैं वही कह रहा हूँ जो तुम्हारी जन्मपत्री में लिखा है। इसलिये तुम आज से ही इसी समय से योगी बन जाओगे। उन्होंने मुलखराज जी से पूछा– क्या तुमने सन्ध्या कर ली है, उत्तर में मुलखराज जी ने कहा– अभी नहीं की, जाकर करूँगा।

प्रभु जी बोले–तुम अभी यहीं बैठकर सन्ध्या कर लो। तब तक मैं तुम्हारी जन्मपत्री एक बार फिर गौर से देख लेता हूँ। मुलखराज आर्यसमाजी थे, वे आर्यसमाजी विधि के अनुसार वहीं सन्ध्या करने बैठ गये। ज्योंही उन्होंने आँखें बन्द की और वेद मन्त्रों का उच्चारण करने लगे तो प्रभुजी ने तीव्र शक्तिपात करके उन्हें उसी क्षण समाधिस्थ कर दिया। उन्हें ध्यान में बिठाकर प्रभु जी कहीं चले गये और आठ दिन बाद लौटे। इतने दिन तक मुलखराज जी अनवरत ध्यानस्थ रहे। बीच–बीच में वे कुछ समय के लिये ध्यान से उठ तो जाते थे किन्तु तब भी उनकी वृत्ति अन्तर्मुखी बनी रहती थी। आठवें दिन जब प्रभुजी लौटे तो उस समय उनकी प्रगाढ़ समाधि लगी हुई थी, उन्होंने अपने संकल्प से उनकी समाधि खोल दी।

इस बीच उन्हें ध्यान में बड़े–बड़े अद्‌भुत तथा लोक–लोकान्तरों के दर्शन हुए। यह सब कुछ देख लेने के बाद ध्यान खुल जाने पर वे अपार आनन्द सागर में गोते लगाते रहे। ध्यान में प्रभु जी के वास्तविक स्वरूप का दर्शन हो जाने से उन्हें यह स्पष्ट अनुभव हो गया कि – पंडित वेश में छिपे हुए ये महात्मा तो सिद्धों के महासिद्ध, गुरूओं के गुरु तथा सारी सृष्टि के मालिक हैं। परम कल्याण घन श्री प्रभु जी ने मुलखराज जी को सहज समधी दे डाली। वे १२ वर्ष तक तुरीयावस्था में रहे। अर्थात् उनकी आँखें हमेशा बन्द रहती थी और वे बन्द आँखों से ही दुकानदारी का सारा काम किया करते थे तथा भीड़भाड़ भरे बाजारों को भी आँखें बन्द किये पार कर दिया करते थे। प्रभु जी ने अपने संकल्प मात्र से उन्हें एक शक्ति सम्पन्न सिद्ध योगी राज बना दिया और उनके द्वारा हजारों संस्कारी आत्माओं का कल्याण करवाया। आज उनके शिष्य प्रशिष्य बड़े उत्साह के साथ देश के कोने–कोने में योग का प्रचार कर रहे हैं और प्रभुजी की पवित्र कीर्ति का विस्तार कर रहे हैं। उन लोगों के सद् प्रयत्नों के फलस्वरूप आज देश के कई प्रमुख नगरों में बड़े–बड़े योगाश्रम स्थापित हो चुके हैं। जहाँ जीवन तत्त्व साधन तथा नेती, धौती आदि क्रियाओं द्वारा साध्य–असाध्य रोगों का उपचार किया जाता है।

श्री आराध्यदेव जी के अवतारोत्सव

प्रेषक—**केशव देव उपाध्याय**, वाराणसी

आराध्यदेव परम योग योगेश्वर सर्व समर्थ श्री चन्द्र मोहन जी महाराज का अवतार दिवस जन्मोत्सव उल्लास पूर्ण वातावरण में देश एवं प्रदेश के सभी मण्डलों में मनाया गया। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव जी की अवतार स्थली श्री अलूपुर धाम, योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा का सवांई (आगरा), तथा योग प्रचार कार्यक्रम मण्डल कानपुर मण्डल द्वारा मनाया गया जन्मोत्सव विशेष आध्यात्मिक आनन्द दायक एवं शिक्षाप्रद रहा। हमारी परम आदरणीया गुरुबहन एवं योग विद्या के, आराध्यदेव के अद्‌भुत एवं अलौकिक कृपा चरित्रों का भजन के माध्यम से विशेष प्रचार एवं प्रसार करने वाली सुश्री उमा शर्मा के; श्री सिद्ध योगाश्रम कुरुक्षेत्र में जन्मोत्सव के अवसर पर; योग साधक बालक—बालिकाओं द्वारा प्रदर्शित नाटक; जो हमारे परम आदरणीय गुरुभाई योगिराज जी रघुनन्द प्रसाद शर्मा (टाटबाबा) जी की पूरी योग परक जिन्दगी का रूपक था; बहुत ही प्रसंशनीय एवं शिक्षाप्रद रहा। इस नाटक में परम आदरणीय गुरुभाई श्री "टाट बाबा जी" की उस समय की मुख्य घटनाओं का प्रदर्शन किया गया था। "टाट बाबा जी" के साथ या उनके द्वारा श्री गुरुदेव भगवान के चरण कमलों में घटित कृपाओं को प्रदर्शित किया गया था। इस नाटक को देखने के बाद, श्री सिद्धयोग का दीक्षित शिष्य, क्यों एवं कैसे योग भ्रष्ट हो जाता है, बिल्कुल स्पष्ट लक्षित होता था। संगीत सम्राट आदरणीय गुरुभाई श्री अनुपम राय की उपस्थिति कुरुक्षेत्र जन्मोत्सव के कार्यक्रम में श्रद्धा एवं आनन्द की लहर में चार—चाँद लगा रही थी।

अब आराध्यदेव की अवतार स्थली श्री अलूपुर धाम का जन्मोत्सव देखा जाय तो यहाँ की बात ही निराली है। यहाँ के सतसंग भवन के विशाल हाल में; श्री गुरुदेव भगवान के अवतार के समय से लेकर लीला तक की मुख्य घटनाओं को मूर्ति के द्वारा दिवालों पर प्रदर्शित किया गया है तथा मुख्य भाव जो उन मूर्तियों का है; दोहे में लिखा गया है। इसे देखने के बाद यह आभास स्वयं होने लगता है कि हमारे श्री गुरुदेव पूर्ण योगेश्वर हैं ही हैं। उनके समान सिर्फ वही हैं दूसरा त्रिलोकी में और कोई नहीं है। यह जन्मोत्सव दिनांक बीस, इक्कीस एवं बाइस अक्टूबर को मनाया गया। बाइस अक्टूबर को जिस दिन आराध्यदेव का प्राकट्य दिवस है, इस महोत्सव ने योग महामेला का रूप धारण कर लिया था। कार एवं जीपों का काफिला, इतना लम्बा था कि उसे करीब दो फलांग तक सड़क के किनारे दोनों तरफ लाइन में लगाया गया था। इस महोत्सव में दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, हिमांचल प्रदेश, मध्यप्रदेश एवं उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद, सहारनपुर, इलाहाबाद (प्रयाग), वाराणसी, गाजीपुर, बलियाँ, जौनपुर, सुल्तानपुर के अतिरिक्त बिहार प्रान्त के कई जनपदों से आये योग जिज्ञासुओं एवं गुरुभाई—बहनों ने भाग

लिया। हिमांचल प्रदेश के कांगड़ा आश्रम से आये हमारे आदरणीय पुरी बन्धुओं का योगमय भजन–संकीर्तन, कुरुक्षेत्र आश्रम से संचालित योग हिमालय की बालिकाओं द्वारा प्रदर्शित योग शक्ति को समझाने वाला नाटक, जो चमत्कारिक एवं अलौकिक कृपाओं से ओत–प्रोत था; विशेष शिक्षाप्रद रहा एवं आध्यात्मिक आनन्द प्रदान किया। श्री अलूपुर धाम की एक बात बड़ी ही निराली है, जो अन्य धामों एवं जगहों पर नहीं मिलती। वह यह है कि इस धाम में बाहर से आने वाले श्री प्रभु प्यारों के लिये अलग निवास की व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। इस गाँव का प्रत्येक परिवार अपनी सामर्थ्य अनुसार एक से लेकर पच्चीस गुरूभाई बहनों के ठहरने एवं नाश्ते (अल्पाहार) की व्यवस्था अगाध श्रद्धा एवं प्रेम भाव से अतीव आनन्द के साथ–साथ निःशुल्क अपने घर पर करता है। आराध्यदेव जी की तपस्थली पर भी यज्ञ, श्री गुरुपूजन एवं भण्डारे का आयोजन आदरणीय ब्रह्मचारी श्री हरिश्चन्द्र मिश्रा जी द्वारा किया गया था, जिसका दर्शन एवं पूजन अधिकांश भाई–बहनों ने किया। श्री अलूपुर धाम के इस द्वय कार्यक्रम में करीब हजार भाई–बहनों, एवं योग जिज्ञासुओं ने भाग लेकर (सम्मिलित होकर) आध्यात्मिक लाभ प्राप्त किया एवं अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने की राह पर आगे कदम बढ़ाया।

योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवाई धाम पर अवतार दिवस अष्टमी, नौमी एवं दशमी को अत्यन्त आनन्द एवं श्रद्धाभाव से मनाया गया। इस धाम के जन्मोत्सव कार्यक्रम में हरियाणा, पंजाब, हिमांचल प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, बिहार एवं मध्यप्रदेश के अलावा उत्तरप्रदेश के, इटावा, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, गाजीपुर, बलियाँ, गोरखपुर, झाँसी, बस्ती, काल्पी और जौनपुर जनपदों के आदरणीय गुरुभाई–बहनों एवं योग जिज्ञासुओं ने भाग लिया। यह कार्यक्रम आश्रम वासी आदरणीय ब्रह्मचारियों एवं साधनरत गुरुभाई बहनों के संयुक्त सहयोग से मनाया गया जो आराध्यदेव की सशरीर उपस्थिति का एहसास करा रहा था।

श्री आराध्यदेव महाराज जी के प्राकट्य दिवस के उपलक्ष्य में योग प्रचार मण्डल कानपुर शहर एवं देहात के आदरणीय गुरुभाई बहनों द्वारा मनाया गया, योग साधन शिविर जो दिनांक चार नवम्बर से सात नवम्बर तक आई०आई०टी० कानपुर के विशाल कम्यूनिटी सेन्टर में मनाया गया, जो अपने प्रकार का अनूठा कार्यक्रम था। यह कार्यक्रम दिनांक तीन नवम्बर की सायंकालीन आराध्य देव की आरती पूजनोपरान्त आरम्भ हो गया। दिनांक चार नवम्बर को प्रातःकाल पाँच बजे मंगला आरती, तत्पश्चात् एक घण्टे का ध्यानाभ्यास, फिर एक घण्टे पाँच मिनट का जीवन तत्व साधन, तदपुरान्त आधे–आधे घण्टे तक अलग–अलग रोगों के लिये विशिष्ट आसनों का प्रदर्शन किया जाता था। इतना कार्यक्रम सम्पादित होते–होते करीब आठ–साढ़े आठ का समय हो जाता था। आरती का समय भी यही था। यह सामूहिक आरती का समय था। यह आरती आराध्यदेव के पार्षद एवं विशेष कृपा पात्र शिष्य तथा दयानिधान की अनेकानेक अद्भुत एवं अलौकिक कृपाओं के चश्मदीद गवाह परम आदरणीय श्री भुवनेन्द्र झा जी द्वारा की जाती थी। आरती के पश्चात् चार–पाँच श्री मद्भागवत् गीता के अध्यायों का

सामूहिक पाठ किया जाता था। उसके बाद परम आदरणीय श्री चन्द्रहास शर्मा जी द्वारा, योगेश्वर श्री गुरुदेव जी महाराज, तथा परम योग–योगेश्वर श्री दादा गुरुदेव जी के योग युक्त कृपा चरित्रों का उदाहरण देकर पाठ किये गये श्री मद्भागवत गीता के भावार्थों को सरल, सुबोध एवं सरस भाषा में समझाया जाता था।

इसी समय (श्री गीता पाठ एवं भावार्थ) आदरणीय गुरुभाई श्री आर०सी० ठाकुर तथा श्री शुक्ला जी द्वारा सूत्रनेती, जलनेती तथा दूधनेती, नवागन्तुक योग जिज्ञासुओं के गुरुभाई बहनों को सिखाया एवं समझाया जाता था। नेती क्रिया करने वालों के लिये दूध एवं घी की व्यवस्था आयोजन कर्ताओं द्वारा निःशुल्क की जाती थी। उपरोक्त दोनों कार्यक्रम सम्पन्न होते–होते लगभग साढ़े दस बज जाता था। साढ़े दस से साढ़े ग्यारह बजे तक अल्पाहार का समय था। इस अल्पाहार के समय भी श्रद्धालु भजनानन्दी गुरुभाई बहनों द्वारा आराध्यदेव की अद्भुत एवं अलौकिक कृपा चरित्रों से सम्बन्धित, योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं से ओत–प्रोत तथा आदि देव भगवान शंकर की कृपाओं के भजन श्रोताओं के योगी बनने में उत्प्रेरक का कार्य कर रहे थे। इन भजनों का श्रोताओं पर तत्काल प्रभाव पड़ते देखा गया। बहुत श्रोताओं की विभिन्न योग मुद्रायें बनी। योगमय भजनों द्वारा श्रद्धा उत्पन्न करने वाले गुरुभाई बहनों में श्री सती आश्रम अमृतसर की मुख्य साधिका आदरणीया शान्ती बहन अपनी ग्यारह–बारह साधिकाओं के साथ आयी थी। इस आश्रम की स्थापना हमारे आराध्यदेव की गुरु बहन आदरणीया द्रौपदी माता जी द्वारा हुयी है। इसके अतिरिक्त हिमांचल प्रदेश से आये परम आदरणीय पुरी बन्धुओं की मण्डली, श्री प्रभु प्यारे कृष्णकान्त जी झासी वाले अपने बाल–गोपालों के साथ, अन्तर राष्ट्रीय स्तर के कव्वाल पं० राम गोपाल द्विवेदी अपनी पूरी मण्डली के साथ और कानपुर शहर तथा देहात के गुरुभाई बहन मुख्य हैं।

साढ़े ग्यारह बजे से डेढ़ बजे तक यौगिक प्रवचनों का कार्यक्रम था, जिसमें प्रवचन कर्त्ताओं की भरमार सी थी। इस यौगिक शिविर कार्यक्रम के अध्यक्ष, परम आदरणीय श्री एस० खरे जी, जो अपने मान अपमान की परिधि से ऊपर उठ चुके हैं; बेहद सरल एवं सामान्य व्यक्तित्व के प्राणी हैं; उन्होंने सभी वक्ताओं के उपदेशों को सभी जिज्ञासुओं एवं श्रद्धालु योग साधकों को श्रवण करने का अवसर दिया। प्रवचन कर्ताओं में परम आदरणीय आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा जी, आराध्यदेव जी के भान्जे श्री सोमदत्त शर्मा जी, श्री पूरण चन्द पन्त जी, श्री जनार्दन पाण्डेय जी, श्री शान्ती बहन जी और दक्षिण भारत से पधारे योगिराज श्री नरसिंह मूर्ति जी के साधनारत सुपुत्र श्री ओ०जी०एल० गुरु प्रसाद जी प्रमुख हैं।

डेढ़ बजे से तीन बजे तक भोजनावकाश का समय था। इस अवधि में ही विभिन्न मण्डलों से आयी भजन पार्टियाँ अपने योगपरक भजन का आनन्द श्री प्रभु दरबार से देती रहती थी। अपराह्न तीन बजे से सायं साढ़े पाँच बजे तक महिला सतसंग का कार्यक्रम निर्धारित था, जिसका नेतृत्व आदरणीया गुरुबहन श्री शान्ती देवी करती थी। महिला कार्यक्रम के बाद

प्रवचनकर्ता आचार्य बन्धुओं द्वारा श्री प्रभु जी की अनेकानेक अद्भुत एवं अलौकिक कृपाओं का वर्णन करके श्रोता समुदाय में श्रद्धा का भाव पैदा किया जा रहा था। सायंकालीन प्रवचन कर्ताओं के द्वारा श्री सद्गुरु स्वरूप (श्री सद्गुरुतत्व) एवं उनकी सामर्थ्य का तथ्य समझाया जाता था जो सबके लिये शिक्षाप्रद एवं अनुकरणीय रहा। आराध्यदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की पूरी जीवन की गाथा, जो कविता रूप में; आदरणीय श्री सोमदत्त जी द्वारा तैयार की गयी है तथा जिसे दरबार से उन्होंने सुनाया; काफी प्रेरणादायक रहा।

इस वर्ष का कानपुर का योग साधना शिविर विशेष शिक्षाप्रद एवं श्रद्धा पैदा करने वाला रहा। कारण यह था कि अखिल ब्रह्माण्ड नायक, परम योग योगेश्वर, दादा गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के भतीजे परम श्रद्धेय एवं आदरणीय श्री प्रेम सागर जोशी जी, अपने पारिवारिक जनों (पुत्र, पौत्र एवं बहू) के साथ अमृतसर से, योगिराज श्री नरसिंह मूर्ति जी के योगी साधक पुत्र आदरणीय श्री ओ०जी०एल० गुरुप्रसाद जी अपने बाल–गोपालों के साथ दक्षिण भारत से, द्रौपदी आश्रम से आदरणीय शान्ती बहन अपनी लगभग बारह साधिकाओं के साथ और आदरणीय श्री कृष्ण देव ऋषिश्वर के साधनारत पुत्र आदरणीय श्री प्रदीप ऋषिश्वर जी पधारे थे।

यह यौगिक समारोह दिनांक तीन नवम्बर की सायंकालीन आरती से आरम्भ होकर सात नवम्बर की सायंकालीन आरती के बाद सम्पन्न हुआ। इस योग शिविर में दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, हिमांचल प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तरांचल के अलावा उत्तर प्रदेश के इटावा, इलाहाबाद, मिर्जापुर, वाराणसी, बलिया, हरदोई, हापुड़ गाजियाबाद, सहारनपुर, मुरादाबाद, झाँसी और काल्पी इत्यादि स्थानों के भाई–बहनों ने भाग लिया।

वैसे श्री सिद्धयोग प्रचार मण्डल कानपुर शहर एवं देहात के आदरणीय गुरुभाई–बहनों को बिना कुछ दिये, यह आध्यात्मिक वर्णन अधूरा सा ही लगता है, और मेरे पास देने के लिये कुछ है ही नहीं। अतः अपने परम पिता परमेश्वर आराध्यदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं अहैतुकी करुणा एवं कृपा सागर परम योग–योगेश्वर दादा गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज से उनके युगल चरण कमलों में साष्टांग प्रणाम अर्पित करके, यही प्रसाद और आशीर्वाद माँगकर; इन्हें दे रहा हूँ कि हे अनाथनाथ ! इनकी बुद्धि और विवेक को सदैव इसी प्रकार और इसमें भी अधिक सतोगुण प्रधान बनाये रहने की कृपा की जाय, जिससे ऐसे योग शिविरों का आयोजन हुआ करे। हमारे कानपुर के आदरणीय एवं अनुकरणीय भाई–बहनों का मत तो यह है कि–

"करते नहीं हम कुछ भी, सब काम हो रहा है।
करते हैं दाता गुरुवर, मेरा नाम हो रहा है।"

❊ ❊ ❊

चित्त-निग्रह

(श्री मगनलाल देसाई)

जीवात्मा को कर्त्ता और भोक्ता बनाने वाला चित्त ही है। शरीर चाहे जो क्रिया करे, परन्तु उस क्रिया में यदि चित्त का साथ न हो तो उससे मनुष्य को कर्तृव्य नहीं मिलता। शराब पीकर बेहोशी की हालत में खून करके दोष से भी खूनी छूट जाता है। भाँग पीकर बकने वाले आदमी को होश आने पर इस बात की खबर ही नहीं रहती कि वह क्या बक गया था; क्योंकि दोनों प्रसंगों में चित्त नशे से परवश होकर केवल संयोग वश कर्म करता है। जो कुछ हम लोग चित्त से करते हैं, वही किया हुआ समझा जाता है और चित्त से न किया हुआ कार्य किया नहीं माना जाता। शरीर जड़ है; इसलिये वह स्वयं कुछ कर सके, ऐसी बात नहीं है। विशुद्ध आत्मा नित्य असंग और चेतन है, इसलिये वह भी कुछ करता नहीं। शरीर और आत्मा दोनों के बीच का चित्त ही आत्मा से शक्ति प्राप्त कर आत्मा के साथ जुड़कर कर्म करता है और जीवात्मा को कर्ता–भोक्ता बनाता है। एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में ले जाने वाला चित्त ही है। चित्त सहित चेतन का शरीर में प्रवेश करना ही 'जन्म' कहलाता है; और वैसे ही शरीर छोड़ना 'मरण' करलाता है।

जैसे झूठ बोलना और झूठ से बचना– ये दोनों शक्तियाँ मनुष्य में होती हैं, जैसे बाण छोड़ना और बाण को वापस लेना– ये दोनों शक्तियाँ एक ही मनुष्य में होती हैं, उसी प्रकार विचार और अविचार– ये दोनों शक्तियाँ चित्त की हैं। चित्त विचार करके करता है तो शुभ करता है और अविचार से करता है तो अशुभ करता है। शरीर की क्रिया रोकने से नहीं रुकती, जब तक चित्त न रोका जाय। हमको जिस प्रकार का जीवन वहन करना है, उसी प्रकार का चित्त बनाना पड़ेगा। जैसे मूर्ख हाँकने वाला गाड़ी, घोड़े और बैठने वाले को गढ्ढे में जा गिराता है और बुद्धिमान् हाँकने वाला निश्चित स्थान पर पहुँचा देता है, उसी प्रकार मूर्ख चित्त शरीर, इन्द्रियों और आत्मा को विपत्ति में डालता है और विज्ञ चित्त उन्हें निश्चित स्थान पर ले जाता है। न तो शरीर में कोई फेर–फार होता है, न आत्मा में होता है; होता है तो वह चित्त में ही होता है। शरीर और आत्मा में फेर–फार की इच्छा भी बेकार है; क्योंकि कर्ता चित्त है। इसलिये सारे शास्त्र, सारे धर्म के रूप भी अनेक हो गये। शरीर नश्वर है, और परमात्मा है ही; परन्तु चित्त का निग्रह किये बिना कल्याण नहीं होता, यह तो सर्वसम्मत है। जो शाश्वत है, वह परमात्मा है। नास्तिकों के मत में भी कोई न कोई शाश्वत पदार्थ है ही। इन्द्रियों का भोग यदि किसी सिद्धान्त में इष्ट माना भी जाता हो, तो भी वह अन्ततः इन्द्रिय–निग्रह के लिये, चित्त की शान्ति के लिये ही है। सुख की इच्छा रखने वालों को चित्त पर दृष्टि रखनी चाहिये। जैसे ऊधमी बालक की माँ बराबर ध्यान रखती है कि बालक कहाँ गया, उसी प्रकार जिज्ञासु पुरूष को बार–बार यह खोज रखनी चाहिये कि चित्त–देवता कहाँ विराज रहे हैं। चित्त के ठहरने के दो स्थान हैं– एक इन्द्रियों के भोग और उनके लिये प्रवृत्ति तथा दूसरा आत्मा और उसके लिये प्रवृत्ति।

जैसे जल का प्रवाह स्वभावतः नीचे की ओर होता है, जैसे वायु की गति स्वाभाविक ही वक्र होती है और जैसे अग्नि की शिखा स्वभावतः ऊपर की ओर उठती है, उसी प्रकार चित्त का स्वाभाविक प्रवाह इन्द्रियों के द्वारा भोग की ओर होता है। जैसे पतंग का स्वाभाविक पतन अग्नि की ओर होता और उसके द्वारा नाश की ओर जाता है। जैसे नदी का प्रवाह स्वाभावतः समुद्र की ओर होता है और वह अपने नाश के लिये होता है, उसी प्रकार चित्त का प्रवाह भी इन्द्रियों का और देह का नाश ही करता है। परन्तु यह उसका स्वभाव है। जैसे भोग की ओर जाने की वृत्ति चित्त की है, वैसे ही भोग की ओर से लौटने की शक्ति भी उसमें है। निगृहीत चित्त भोग से लौटता है और अवश चित्त भोग में फँसा रहता है। चित्त की सामर्थ्य पर बड़प्पन और छोटापन, दिव्यता या पशुता का भेद निर्भर है। निगृहीत चित्त ही देवता है और भोग में भटकने वाला चित्त ही पशु है। निगृहीत चित्त ही परम हितकारी बन्धु है और भोगों में विचरने वाला स्वछन्द चित्त सबसे बड़ा बैरी है। पशु–पक्षी सब भोगाधीन होने के पामर हैं। भोगाधीन चित्त पामर है, दरिद्र है, पराधीन है। भोगमात्र पराधीन है और यह पराधीनता दूसरे से आशा करवाती है। जो सुख दूसरे के आश्रित होता है, उसकी स्थिरता दूसरे की स्थिरता और अनुकूलता तक ही होती है। मनुष्य में भी छोटाई–बड़ाई चित्त की वशता के ऊपर ही है। जिसका चित्त विशेष निगृहीत होता है, वह दूसरों से बड़ा है, देवता रूप है; क्योंकि उसका चित्त विशेष निगृहीत है। निगृहीत चित्त में विशेष सामर्थ्य, शक्ति और सिद्धि का उदय होता है, और अनिगृहीत चित्त भोग से विविध सामर्थ्य का नाश करता है। भोग पल–पल में पुण्य का नाश करता है। अभोग पल–पल में चित्त को निगृहीत करके विविध शक्ति का संचय करता है। जैसे समान आय वाले खर्चीले और कंजूस–दो मनुष्यों में कंजूस धन–संचय करता है और खर्चीला उससे वंचित रहता है, उसी प्रकार निगृही चित्त शक्ति का क्षय करता है। एक मनुष्य भोग–विशेष में निगृहीत होता है और दूसरे में अनिगृहीत। इससे जितना भोग में निग्रह होगा, उतनी ही उसमें सार्थ्य विशेष आयेगी। पाँच प्रकार के भोग होते हैं। पाँचों प्रकार के भोग से जिसकी चित्त की वृत्ति उपरामता को प्राप्त हो गयी है और इस कारण जिसका चित्त आत्मा में सदा के लिये स्थापित हो गया है, वह मुक्त है। चित्त की भोग में स्थिति का नाम है जन्म–मरण; चित्त की आत्मा में स्थिति का नाम है मोक्ष। भोग में चित्त को रखते हुए जो मोक्ष की इच्छा करता है, वह मानो कमर में भारी पत्थर बाँधकर सागर तैरने का इच्छुक है। चित्त से भोग का त्याग किये बिना, चित्त को भोग में से हटाये बिना कभी चित्त आत्मा में स्थिर होने का नहीं।

जैसे एक देह छोड़े बिना, दूसरा देह सामान्य मनुष्य के द्वारा नहीं धारण किया जा सकता, उसी प्रकार भोग में से चित्त को हटाये बिना आत्मा में चित्त की स्थिति मुमुक्षु के द्वारा सिद्ध नहीं हो सकती।

चित्त आलम्बन के बिना नहीं रह सकता। चित्त का भोग ही आलम्बन है। भोग से परिणाम में दुःख तो दीखता है, परन्तु आत्मा के सुख का अनुभव नही होता; इसी से वह भोग त्यागकर

आत्मा में स्थिति नहीं कर सकता। अपने पिता के यहाँ पाली गयी कन्या बड़ी होने पर विवाह होने के बाद ससुराल जाने में हिचकती है, उसी प्रकार चित्त भोग त्यागने में हिचकता है। जब ब्याही कन्या परवश होकर ससुराल जाती है और वहाँ पति सुख का अनुभव करती है, वह वहाँ कठिनता से रहती है, पर जब पतिगृह में एकता प्राप्त करती है, तब पितृगृह को भूल जाती है। इसी प्रकार चित्त को जब आत्मसुख का अनुभव होता है, जब वह भोग सुख को छोड़ देता है। आत्मसुख का अनुभव हुए बिना चित्त भोग सुख के रस को छोड़ नहीं सकता। भले ही शरीर से भोग न भोगे; परन्तु उसके अन्तर में भोग की लालसा तभी छूटती है, जब वह आत्मसुख का अनुभव करता है। भोग सुख खण्डित है, क्षणिक है। आत्म सुख अनन्त है। जैसे वस्तु का सुख तभी तक भोगा जाता है, जब तक वह वस्तु रहती है, उसी प्रकार भोग का सुख भोग–पदार्थ प्राप्त होने तक भोगा जाता है। जैसे मणि का प्रकाश सुलभ है और दीपक का प्रकाश पराधीन है, उसी प्रकार आत्मसुख सुलभ और नित्य है तथा भोग सुख दुर्लभ और अनित्य है। भोग सुख वस्तु के अधीन है और वस्तु पल–पल काल के गाल में चली जा रही है।

केवल भोग–वस्तु ही कालाधीन नहीं, बल्कि भोग भोगने के साधन–देह और इन्द्रियाँ भी कालाधीन हैं। इसलिये भोग–पदार्थ, देह, इन्द्रियाँ–सब कालाधीन और पराधीन हैं; और इसमें भी भोग सुख भोग के प्राप्ति–काल में ही रहता है। भोग से सुख चाहने वाले को अनेकों क्लेश और कष्ट सहकर भोग प्राप्त करने पड़ते हैं। प्राप्त भोग की काल से और पराये से रक्षा करनी पड़ती है, इन सब में उसको सुख के बदले दुःख का ही अनुभव करना पड़ता है। भोग प्राप्त करने के विचार से जब से उद्यम शुरू होता है, तब से उस भोग को प्राप्त कर भोगने के समय तक तो भोग की इच्छा वाले को सुख के बदले दुःख का ही अनुभव होता है। प्राप्ति के काल में सुख का लेश अनुभव करने के बाद, फिर वृत्ति अन्य भोग की प्राप्ति में या प्राप्त भोग के क्षण में लीन हो जाती है। यों एक क्षण के सुख के लिये अनेक क्षण के लंबे समय में जीव दुःख का अनुभव करता है और इस भोग को प्राप्त करने तथा भोगने में भोग के साधन, शरीर इन्द्रियों और बल का नाश ही होता है।

विषयभोग और रसभोग– ये दो मुख्य भोग हैं। विषय भोग से शरीर, इन्द्रियों और चित्त का बल नष्ट होता है, शरीर क्षीण होता है, वीर्य नाश को प्राप्त होता है, प्राण क्षीण होता है। भोग मात्र पिछले भोग के लिये शरीर को अशक्त करते चले जाते हैं और फिर दूसरे भोग की वासना प्रदान करते जाते हैं। यह भागों की विशेष खूबी है। भोग भोगने से सदा के लिये भोग की इच्छा मरती नहीं। परन्तु भोग के रस का, भोगेच्छा का बीज वह बोता जाता है और उसकी प्राप्ति के लिये आसक्ति प्रदान करता जाता है। यह बड़ी विचित्रता है। प्रत्येक भोग दूसरे भोगों की प्राप्ति की वासना और उसको प्राप्त करने की आसक्ति प्रदान करता रहता है। ऐसी परम्परा रहती है, जब चित्त भोग से कैसे तृप्त हो ? शरीर, भोग और साधन के कम होने और नाश को प्राप्त होने पर भी भोगेच्छा न तो घटती और न नाश को प्राप्त होती है, बल्कि ताजी होती जाती है और

इसी कारण वह दूसरी शरीर को उत्पन्न करती है। इसी का नाम है पूर्व देह का मरण और नये देह का जन्म।

देह धारण करना और त्याग करना तथा फिर दूसरा देह धारण करना–यह चक्र न जाने कितने काल से जीव का चलता आ रहा है। अनेकों दुःखों और क्लेशों का अनुभव होने पर भी चित्त इससे विराम नहीं प्राप्त कर रहा है ; क्योंकि उसको दूसरा आलम्बन नहीं मिला। जिसे शराब की लत पड़ गयी है, वह अनेकों प्रकार के दुःख उठाता हुआ भी आदत होने के कारण जैसे उसको छोड़ नहीं सकता और दुःख में पड़ा रहता है, उसी प्रकार चित्त दुःख पाने पर भी भोग को नहीं छोड़ सकता।

जैसे नदी के पानी को समुद्र में जाने से रोकने के लिये सुदृढ़ बाँध के सिवा अन्य कोई उपाय सफल नहीं हो सकता, उसी प्रकार चित्त की वृत्ति को भोग की ओर से दृढ़ आग्रहपूर्वक हटाने के सिवा लाख उपाय करने पर भी वह आत्मा की ओर नहीं लग सकता।

आत्मा का अर्थ है– नित्य, सुप्राप्त, शाश्वत, बिकार–विनाशरहित अखण्ड सुख का धाम। और भोग का अर्थ है– अनित्य, दुर्लभ, बिकारी, विनाशी तथा क्षणिक सुख और अखण्ड दुःख का धाम। इसलिये चित्त को भोग की ओर से हटाने के लिये आग्रह पूर्वक भोग विशेष से निवृत्ति रूप वैराग्य का प्रबल बाँध उसके प्रवाह को रोकने के लिये बाँधना चाहिये और साथ–ही–साथ दूसरी ओर से प्रवाह को आत्मा की ओर बहाने का अभ्यास करना चाहिये। वैराग्य और अभ्यास के बिना चित्त आत्मा में स्थिति लाभ नहीं कर सकता।

जैसे पर–स्त्रीलम्पट पुरुष परस्त्री की ओर से मुख मोड़कर यदि अपनी स्त्री में पूर्णरूप से मग्न हो जाय, तभी वह परस्त्री का ख्याल छोड़ सकता है, नहीं तो फिर परस्त्री में रत हो जाता है, उसी प्रकार भोग से लौटा हुआ चित्त आत्मा में स्थिर होने पर भोग को भूल सकता है, नहीं तो फिर भोगों में लौट आता है।

अब प्रश्न यह है कि पाँचों भोगों के चित्त को कैसे लौटाया जाय तथा आत्मा में उसकी स्थिति कैसे करायी जाय ? प्रत्येक भोग के लिये पृथक्–पृथक् उपायों के साथ पहले 'वैराग्य' के विषय में समझना है।

चित्त भोग की इच्छा करता है, उसके पहले चित्त की शान्त अवस्था होती है। चित्त जब शान्त होता है, किसी भी संकल्प या इच्छा से रहित होता है, तब वह अखण्ड सुख का अनुभव करता है। संकल्प, इच्छा, भोग–विचार शान्त चित्त को अशान्त करते हैं। अशान्त चित्त दुःख और क्लेश का अनुभव करता है। अब तक भोगों में लगे चित्त को लौटाकर अखण्ड सुख की इच्छा करने वाले जिज्ञासु को सर्व प्रथम जीवन–यात्रा चलाने के अतिरिक्त सारे व्यसनों और भोगों को त्यागने का अभ्यास करना चाहिये। इस साधन में सबसे प्रथम सारे व्यसनों का त्याग करे। व्यसन उसे कहते हैं, जिसके न होने पर देह तो नष्ट होती नहीं, परन्तु जिसके न मिलने पर मन को चैन नहीं पड़ता। बीड़ी, पान, सुपारी, तंबाकू, अफीम, शराब, चाय, काफी, इत्र, फुलेल

आदि जो जो व्यसन हों, जो मनोरंजन के लिये किये जाते हों, उनको आग्रहपूर्वक छोड़ें–बल पूर्वक छोड़े। इन व्यसनों के छोड़ देने पर चित्त को बहुत आराम मिलता है। चित्त में शक्ति और स्फूर्ति आने लगती है। खूबी यह है कि ज्यों–ज्यों चित्त व्यसनों के अधीन होता जाता है, त्यों–ही त्यों चित्त, शरीर और इन्द्रियों की शक्ति नष्ट होती जाती है और धन भी नाश को प्राप्त होता जाता है एवं ज्यों–ज्यों व्यसन छूटता जाता है, त्यों–त्यों बल, बुद्धि, तेज और धन बढ़ता जाता है। इसलिये साधक को कोई भी व्यसन नहीं रखना चाहिये।

इसके बाद किसी भी दूसरे की कोई भी वस्तु लेने अथवा अपने व्यवहार में लाने की बात मन से भी न सोचे। पर–स्त्री–भोग, पर–धन–हरण, पर वस्तु को जाने या अनजाने लेने की इच्छा भी न करें। इस साधना से व्यभिचार चोरी आदि दुराचार, सब बंद हो जाते हैं। और अपनी सच्ची मेहनत की कमाई से जो कुछ मिले, उसी से निर्वाह करने का बल आता है। सच्ची मेहनत की कमाई से प्राप्त रोटी में चित्त शुद्ध करने की अद्भुत सामर्थ्य है। अधर्मयुक्त, दूसरे से छीनी हुई, झूठ–कपट और चोरी से की हुई कमाई का सूक्ष्म संस्कार भी बुद्धि को मलिन करता है। श्रेय की इच्छा रखने वाले पुरुष को अपने हक की, सच्ची मेहनत की कमाई के सिवा किसी से कुछ भी न लेना–दान भी न लेना चाहिए।

फिर ऐसी साधना करें कि अपनी कोई भी क्रिया किसी को दुःख देने के आशय से न की जाय। प्रत्येक क्रिया करने के पहले यह जान ले कि इस क्रिया से किसी को दुःख तो नहीं होता ? यह सबसे श्रेष्ठ धर्म है, इसको 'अहिंसा' कहते हैं। अहिंसा का विस्तृत अर्थ है। अहिंसा का सर्वांगीण पालन करने वाला मुक्ति पाता है। डाक्टर रोगी का आपरेशन करता है, वह हिंसा नहीं है। डाक्टर की यह क्रिया रोगी को दुःख देने के लिये नहीं, उसे दुःख से मुक्त करने के लिये होती है। राजा चोर को दण्ड देता है, वह हिंसा नहीं है; क्योंकि उसकी यह क्रिया चोर को चोरी के दुर्व्यसन से मुक्त करती है, वह चोर के सुख के लिये होती है। अहिंसा का सारांश यह है कि क्रिया का आशय दूसरों को दुःख देना भी नहीं होना चाहिये। किसी के हक की रक्षा करने में–जिनका हक नहीं है, उनको दुःख हो तो वह हिंसा नहीं है। बिना हकवाले हक न होने से दुखी होते हैं, हकवाले की क्रिया से नहीं।

इसके बाद जिज्ञासु अपने हक के भोगों में भी सुख का अभाव देखकर उनसे वृत्ति हटाकर आत्मा में लगाये। जीवन–निर्वाह मात्र के लिये भोजन करें, जीभ के स्वाद के लिये नहीं। शरीर–रक्षामात्र के लिये वस्त्र पहने, सुन्दरता दिखलाने के लिये नहीं। कीमती वस्त्र पहनना, बाल संवारना, फैशन वाले कपड़े, आभूषण पहनना आदि सबका धीरे–धीरे त्याग करता जाय। भोग में सुख समझकर भोगों में लिपटा हुआ जीव जब उनमें सुख के बदले दुःख देखता है, तभी उनसे पीछे हट सकता है।

'भोग में सुख है' इस प्रकार का प्रतिपादन करने वाला साहित्य जगत् में बहुत पाया जाता है। नाटक, सिनेमा, उपन्यास, कहानी, समाचार–पत्र, मासिक पत्रिका, चित्र, परम्परा से चली

आयी बातों और भावनाओं ने भोग में सुख न होने पर भी 'उसमें सुख है' ऐसा निश्चय मन में गहरा धँसा दिया है। जैसे शराब के नशे में बकते हुए आदमी से हीरे का मूल्य पूछो तो वह कुछ नहीं बता सकता–क्योंकि उसे उसका पता ही नहीं होता, उसी प्रकार भोग–सुख के नशे में पड़े हुए जीव को आत्म सुख की कोई कल्पना ही नहीं होती। जब तक नशा नहीं उतरता, तब तक व्यसनी यह ठीक–ठीक नहीं समझ पता कि वह कौन है ? उसी प्रकार भोग–वासना में फँसा जीव अपने स्वरूप को नहीं जानता। इसलिये जिज्ञासु 'भोग में सुख है' यह बतलाने वाले सारे संग को छोड़ दे। भोग और भोगी का संग छोड़ दे। अर्थात् उनके साथ में उतनी ही बात करे, जितनी व्यवहार के लिये अनिवार्य हो। दूसरी बातों में पड़े ही नहीं। भोग और भोगी का संग छोड़े बिना लाखों उपायों से भोग छूटने वाले नहीं हैं। भोग और भोगी के संग में रहकर भोग छोड़ने की इच्छा करने वाले मूर्ख हैं, संसार को ठगते हैं, दम्भी हैं या वासना वाले हैं। भोग 'मुझ ज्ञानी का क्या कर लेगा' यह कहने वाला मूर्ख है 'शठ और ठग है, पामर है, दया का पात्र है।

ज्ञानी वह है, जो भोग–वासना को समूल छोड़ चुका है। इस प्रकार भोग और भोगी का संग छोड़ते समय भलों को भोग त्याग करने वाले तथा भगवत्पथ में चलने वालों का संग करायें। जगत् में जिसके पास जो होता है, वही दूसरों को देता है। भोगी दूसरों को भोग देता है, साधु दूसरों को सज्जनता देता है; इसलिये अपने को जैसा बनना हो, वैसा ही संग करे। आत्मज्ञान का मनन, भोग में दुःख देखने का अभ्यास, संसार नाशवान् और मिथ्या है– यह भावना, एकान्तवास, पवित्र स्थान में निवास, हरिभक्ति, यथाशक्ति व्रत और उपवास, एवं सत्य का सेवन करे, नीति और सदाचार का पालन करे; मुक्तों की जीवनी तथा ईश्वर के अवतारों की महिमा की कथाएँ बाँचे और सुने; साधुओं का संग करे; मृत्यु भय को सदा मन में रखे; सम्बन्धियों के सम्बन्ध क्षणिक हैं–जाने तथा मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा, क्या करने के लिये आया हूँ, क्या करता हूँ और क्या करना चाहिये–इत्यादि विषयों पर एकान्त में बैठकर या किसी निर्लोभी, ज्ञानी साधु की सेवा में रहकर विचार करे; लघु सात्विक भोजन करे। न्याय और नीति के अनुसार, लोकनिन्दा न हो– इस प्रकार की आजीविका करे। ऐसा कर्म करे, जो प्राणिमात्र के लिये सुखरूप हो। दया रखे, सुपात्र के दान करे, पुण्य कर्म करे, देवता का पूजन करे, वृद्ध, ज्ञानी, आश्रित तथा साधु की सेवा करे, ध्यान और अभ्यास करे, जप करे, बाहर और भीतर से पवित्र रहे, प्राणिमात्र का भला चाहे। प्राणिमात्र परमात्मस्वरूप है, यह जानकर सभी प्राणियों की यथाशक्ति अपनी क्रियाओं से सेवा करे। इन और ऐसे ही दूसरे उपायों से तथा संतों एवं शास्त्रों के आज्ञानुसार आचरण करने से चित्त भोगों से हटकर धीरे–धीरे स्वप्रयत्न में आगे बढ़ता जायगा। परमात्मा की शरण में रहे तथा भगवान, सारी आपत्तियों से, भोगमात्र से चित्त को हटाकर निजस्वरूप में लगा लें, इसके लिये बार–बार उनसे प्रार्थना करे।

* * *

आखिर अपना ही लिया तुमने...

—राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

आखिर अपना ही लिया तुमने
मुझको लल्ला-लल्ला कहकर
सीने से लगा ही लिया मुझको
सिर पर प्यारी थपकी देकर।

अपना सिर चरणों में रखकर
जिसने भी जोड़ दिये दो कर
बस इतने से ही पिघल गये
कितने भोले तुम शिव शंकर
उसे योग शक्ति से भर डाला
तन का सब पाप पुंज लेकर।

मैं निर्बल अति रोगी-कामी
न रहा किसी के मतलब का
सब छोड़ चले मुझसे आशा
कैसा संसार ये स्वारथ का
मुझको नव जीवन दे डाला
पावन चरणों में जगह देकर।

अब तक कितने ही प्राण दान
देकर तुमने ही बचाया
तुम प्राणों के भी ईश्वर हो,
सब जगह तुम्हारी माया है
फिर क्यों न तुम्हीं से प्रेम करूँ
तन-प्राण तुम्हीं को अर्पण कर।

रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी

ईश्वरीय रूपदर्शन तथा ध्वनि श्रवण

—ईश्वर का साक्षात्कार दो प्रकार का होता है—एक में जीवात्मा तथा परमात्मा का योग होता है, दूसरे में ईश्वरीय रूपों के दर्शन होते हैं। पहला ज्ञान है और दूसरी भक्ति।

—सचमुच ही ईश्वर को देखा जा सकता है, जैसे इस समय हम-तुम बैठकर बातचीत कर रहे हैं, इसी तरह उनके दर्शन तथा उनसे सम्भाषण हो सकते हैं। मैं सच कहता हूँ, शपथ पूर्वक कहता हूँ।

—ईश्वर विभिन्न रूपों में प्रकाशित होते हैं। शुद्धहृदय भक्त इन ईश्वरीय रूपों को देख सकते हैं। ईश्वर की कृपा से भीतर दिव्य भागवती तनु निर्मित होता है, उसमें दिव्य इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हीं के द्वारा इन रूपों के दर्शन होते हैं। केवल सिद्ध पुरुष ही इन्हें देख सकते हैं।

—'क्या ईश्वर के दर्शन इन चर्मचक्षुओं से ही होते हैं ?' इस प्रश्न के उत्तर में श्रीरामकृष्ण ने कहा, "नहीं, उन्हें इन चर्मचक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। साधना करते-करते साधक के भीतर एक प्रेम की देह उत्पन्न होती है, उसमें प्रेम के नेत्र, प्रेम के कर्ण होते हैं। उन्हीं प्रेमनेत्रों से उनके दर्शन होते हैं, उन्हीं प्रेमकर्णों से उनकी वाणी सुनाई देती है।"

—अनाहत ध्वनि सदा अपने आप उठ रही है। यह प्रणव ध्वनि है। यह परब्रह्म से आ रही है। योगी इसे सुन पाते हैं। विषयासक्त जीव इसे नहीं सुन पाते। योगी समझ सकते हैं कि यह ध्वनि एक ओर नाभि में से उठती है तथा दूसरी ओर उस क्षीरोदशायी परब्रह्म से।

समाधि तथा ब्रह्मज्ञान

—समाधि-अवस्था में मन में किस प्रकार का अनुभव होता है ? मछली को कुछ देर पानी के बाहर निकाल रखने के बाद फिर पानी में छोड़ देने पर उसे जिस प्रकार का आनन्द होता है, समाधि में मन में उसी प्रकार का अनुभव होता है।

—'वह अत्यन्त दुर्गम स्थान है, वहाँ गुरु और शिष्य की भेंट नहीं होती।' ब्रह्मज्ञान की अवस्था ऐसी गूढ़ है कि उसके होने पर गुरु-शिष्य-भेदबुद्धि नहीं रह जाती।

—जिस प्रकार दीपक के जलाते ही हजार वर्षों की अँधेरी कोठरी भी तुरन्त आलोकित हो जाती है, उसी प्रकार ज्ञान का प्रकाश जीव के हृदय से जन्मजन्मान्तर के अज्ञानान्धकार को दूर कर उसे प्रकाशित कर देता है।

—'क्या समाधि-अवस्था में आपको बाह्य जगत् का बोध रहता है ?' इस प्रश्न के उत्तर

में श्री रामकृष्ण के कहा था—"समुद्र में जल के नीचे पहाड़-पर्वत, घाटियाँ और दर्रे होते हैं, पर वे ऊपर से नहीं दिखाई देते। समाधि में भी अखण्ड सच्चिदानन्दसमुद्र के ही दर्शन होते हैं, अहं-बोध जाने कहाँ छिप जाता है !"

—यथार्थ ज्ञान होने पर अहंकार नहीं रहता। समाधि हुए बिना ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। भरे दोपहर के समय सूरज ठीक माथे के ऊपर रहता है। उस समय मनुष्य चारों ओर देखता है, पर उसे अपनी छाया नहीं दिखाई देती, वैसे ही, यथार्थ ज्ञान होने पर, समाधि होने पर अहंकार रूपी छाया नहीं रहती। यदि ठीक-ठीक ज्ञान होने के पश्चात् भी किसी में 'अहं' दिखाई पड़े तो ऐसा जानना कि वह 'विद्या का अहं' है, 'अविद्या का अहं' नहीं।

—बुद्धदेव नास्तिक थे या नहीं इस प्रश्न के उत्तर में श्री रामकृष्ण के कहा था—"वे नास्तिक नहीं थे, वे अपनी उपलब्धियों के विषय में मुँह से कुछ कह नहीं सके। बुद्ध माने क्या है जानते हो ?—'बोध स्वरूप का चिन्तन करते हुए वही बन जाना—बोध स्वरूप बन जाना। जिस अवस्था में स्वरूप का ज्ञान होता है वह 'अस्ति' तथा 'नास्ति' के बीच की अवस्था है। 'अस्ति' तथा 'नास्ति' प्रकृति के गुण धर्म हैं। यथार्थ सत्य 'अस्ति' 'नास्ति' के परे है।"

—"ज्ञान अज्ञान दोनों के पार हो जाओ, तभी उन्हें जान पाओगे। नानात्व का ज्ञान ही अज्ञान है। पाण्डित्य का अहंकार भी अज्ञानजन्य ही है। एक ईश्वर सर्वभूतों में विराजमान है—इस निश्चयात्मक बुद्धि का नाम ज्ञान है। उन्हें विशेष रूप से जानना ही विज्ञान है।

"मान लो पैर में काँटा चुभा है। उस काँटे को निकालने के लिए और एक काँटे की जरूरत पड़ती है। फिर उस काँटे के निकल जाने पर दोनों काँटों को फेंक दिया जाता है। इसी प्रकार अज्ञानरूपी काँटे को निकालने के लिए पहले ज्ञानरूपी काँटे को लाना पड़ता है। फिर उन्हें पाने के लिए ज्ञान-अज्ञान दोनों को फेंक देना पड़ता है, वे ज्ञान अज्ञान के परे जो हैं !

"लक्ष्मण ने कहा था, "राम ! कितना आश्चर्य है ! इतने बड़े ज्ञानी वसिष्ठदेव भी पुत्रशोक से अधीर होकर रो पड़े !" राम ने कहा, "भाई ! जिसमें ज्ञान है, उसमें अज्ञान भी है, जिसे एक का ज्ञान है, उसे अनेक का भी ज्ञान है। जिसे प्रकाश का अनुभव है, उसे अन्धकार का भी अनुभव है। ब्रह्म ज्ञान-अज्ञान के पार है, पाप-पुण्य के पार है, धर्म-अधर्म के पार है, शुचि-अशुचि के पार है।"

एक व्यक्ति—"दोनों काँटों को फेंक देने के बाद क्या रह जाता है ?"

श्री रामकृष्ण—"नित्य शुद्ध बोधरूपम। वह तुम्हें कैसे समझाऊँ ? अगर तुमसे कोई पूछे, 'कहो घी कैसा लगा ?' तो तुम उसे घी का स्वाद कैसे समझाओगे ? ज्यादा से ज्यादा तुम

उससे इतना ही कह सकते हो कि 'घी घी के ही जैसा लगा।' एक नववधू से उसकी सखी ने पूछा था, 'तेरे पति आए हुए हैं। अच्छा बहन, पति के आने पर किस तरह का आनन्द होता है ?' वह नववधू बोली, 'बहन, तेरा विवाह होने के बाद जब तेरे पति आएँगे, तब तू समझ पाएगी, अभी तुझे मैं कैसे समझाऊँ ?''

समाधि-अवस्था का मनोभाव

—चिड़िया के घोंसले को यदि नष्ट कर दिया जाए तो वह उड़ती हुई आकाश का आश्रय लेती है। इसी प्रकार, यदि देह और जगत का बोध चला जाए तो जीवात्मा मानो परमात्मा रूपी आकाश में उड़ जाता है—समाधिमग्न हो जाता है।

—जीव के मरे बिना शिव नहीं आता (अर्थात् जीवत्व के नष्ट हुए बिना शिवत्व प्राप्त नहीं होता)। फिर, शिव के शव बने सिवा माँ आनन्दमयी उसके वक्षःस्थल पर नृत्य नहीं करती (अर्थात् इस शिवत्व–अभिमान का भी अतिक्रमण करने के बाद ही सर्वोच्च आनन्द की अवस्था प्राप्त होती है)।

—कपूर को जलाने पर कुछ भी नहीं बचता। विचार का अन्त हो जाने पर समाधि होती है, उस समय 'मैं' 'तुम' 'जगत्' इन सबका चिन्हमात्र नहीं रहता, मन परब्रह्म में लीन हो जाता है।

—अहंकार के दूर हो जाने पर जीवत्व का नाश हो जाता है। इस अवस्था में समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। जीव नहीं, ब्रह्म ही ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।

—किसी भक्त के यह कहने पर कि 'ईश्वर अवाङ्मनसगोचर हैं—मन, बुद्धि तथा वाणी के अगोचर हैं', श्री रामकृष्ण ने कहा, ''नहीं, यद्यपि वे इस मन के गोचर नहीं हैं, तथापि वे शुद्ध मन के गोचर हैं, इस बुद्धि के गोचर नहीं हैं, परन्तु शुद्ध बुद्धि के गोचर हैं। कामिनी–कांचन की आसक्ति के दूर होते ही शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि का उदय होता है। शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि और शुद्ध आत्मा एक ही हैं। वे इस शुद्ध बुद्धि के गोचर हैं। क्या ऋषि–मुनियों ने उनके दर्शन नहीं किए ? उन्होंने शुद्ध बुद्धि के द्वारा शुद्ध आत्मा का साक्षात्कार किया था।

—ईश्वर विषयासक्त मन और बुद्धि के अगोचर हैं, परन्तु शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि के गोचर हैं। कामिनी–कांचन के ही कारण मन अशुद्ध होता है। जब तक भीतर अविद्या है तब तक मन और बुद्धि कभी शुद्ध नहीं हो सकते। वैसे तो मन और बुद्धि अलग माने जाते हैं, परन्तु शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि एक हैं—दोनों चैतन्यस्वरूप शुद्ध आत्मा हैं। इसी चैतन्य–स्वरूप (शुद्ध आत्मा) में चैतन्य–स्वरूप (परमात्मा) का साक्षात्कार होता है।

समाधि के पश्चात् होने वाला विज्ञान

—'नेति नेति' करते हुए आत्मा की उपलब्धि करने का नाम ज्ञान है। 'नेति नेति' विचार करते हुए समाधि–अवस्था प्राप्त होने पर आत्मा की उपलब्धि होती है।

विज्ञान यानी विशेष रूप से जानना। किसी ने दूध के बारे में सुना भर है, किसी ने दूध देखा है और किसी ने दूध पिया है। जिसने केवल सुना ही है वह अज्ञानी है, जिसने देखा है वह ज्ञानी है, जिसने पिया है उसे विज्ञान अर्थात् विशेष रूप से ज्ञान हुआ है। ईश्वर के दर्शन प्राप्त होने के पश्चात् उनके साथ परम आत्मीय की तरह वार्तालाप आदि होना—इसी का नाम विज्ञान है।

पहले 'नेति नेति' विचार करना पड़ता है। ईश्वर पंचभूत नहीं हैं, इन्द्रियाँ नहीं हैं; मन, बुद्धि, अहंकार नहीं हैं; वे सभी तत्वों के अतीत हैं। छत पर चढ़ने के लिए एक एक कर सब सीढ़ियों का त्याग करते हुए जाना होता है। सीढ़ियाँ छत नहीं हैं। किन्तु छत पर जा पहुँचने के बाद दिखाई देता है कि जिन ईंट, चूना, सुर्खी आदि वस्तुओं से छत बनी है, उन्हीं से सीढ़ियाँ भी बनी हैं। जो परब्रह्म है, वही यह जीव जगत बना है, चौबीस तत्व बना है। जो आत्मा है, वही पंचभूत बना है। तुम कहोगे, मिट्टी अगर आत्मा से ही बनी है तो वह इतनी कड़ी कैसे है ? उनकी इच्छा से सब कुछ सम्भव हो सकता है। क्या रज–वीर्य से हड्डी और माँस का निर्माण नहीं होता ? समुद्र के झाग से बना पत्थर कितना कड़ा होता है।

विज्ञान–लाभ होने के बाद संसार में भी रहा जा सकता है। उस समय स्पष्ट अनुभव होता है कि ईश्वर ही जीव–जगत् बने हैं, वे संसार से अलग नहीं हैं। ज्ञानलाभ करने के पश्चात् जब रामचन्द्र ने कहा कि वे संसार में नहीं रहेंगे, तब दशरथ ने उन्हें समझाने के लिए वसिष्ठ को उनके पास भेज दिया। वसिष्ठ ने कहा, 'राम ! यदि संसार ईश्वर से रहित हो, तो तुम उसका त्याग कर सकते हो।' रामचन्द्र चुप्पी साधे रहे, क्योंकि वे भलीभाँति जानते थे कि ईश्वर को छोड़कर कुछ भी नहीं है।

***

गुरु और शिष्य का सम्बन्ध पूर्वज और वंशज के सम्बन्ध जैसा ही है। श्रद्धा, नम्रता, शरणागति और आदरभाव से शिष्य गुरु का मन मोह ले तो भी उसकी आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है।

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह, रोहुआ, बलिया

आया है कबसे दर पे गुरुवर तेरे सवाली,
हाथ में लेकर कुछ नहीं, मन को कर के खाली।

+

वो खुद से पूछता है, यहाँ कैसे आ गया है,
डोर है वो किसका जो उसको खींच लिया है,
आँखों में आँसू भरके देखे और चेहरे पे लाली,
हाथ में लेकर............।

+

रज के हर कण में प्रभु आपको ढूँढ़ता है,
प्रभु लीला व कथाएँ वो ध्यान से सुनता है,
पावन मन्दिर सिद्ध गुफा की फेरी लाख लगा ली,
हाथ में लेकर............।

+

राहें योगी भाई–बहनों को जो प्रभु आप दिखायें,
लालसा लेकर बैठा है, श्री गुरुजी उसे बतायें,
डर भी है कहीं खो न जाये जीवन भाग्यशाली,
हाथ में लेकर............।

+

एक भरोसा है उसको, गुरुवर उसके साथ,
बलि जाये इस भूमि पर झट आये दीनानाथ,
राजेश प्रभु रामचन्द्र को, अपना गुरु बना ली,
हाथ में लेकर............।

योगिराज श्री गुदड़ी बाबा का प्रसंग

प्रेषक-केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

सन् उन्नीस सौ अस्सी के दशक का प्रसंग है। हमारे कुछ आदरणीय गुरूभाई–बहन योगिराज श्री देवरहा बाबा के दर्शन लाभ करने उनके प्रयागराज कुम्भ मेला कैम्प में गये थे। भाई–बहनों की संख्या ग्यारह थी। ये आदरणीय भाई–बहन योगिराज श्री देवरहा बाबा के आश्रम प्रांगण में पहुँचे तो सद्गुरू जय–जय, रामलाल जय–जय, अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जै–जै का संकीर्त्तन करना आरम्भ कर दिये। उस समय बाबा जी अपनी पर्णकुटी में विराजमान थे एवं उनको अपनी पर्णकुटी में गये पाँच–सात मिनट ही हुये थे। सामान्यतया पर्णकुटी में प्रवेश करने के बाद परम आदरणीय श्री देवरहा बाबा जी तीस मिनट अर्थात आधे घण्टे के बाद ही बाहर निकलकर दर्शन देते थे। परन्तु आश्चर्य, महान आश्चर्य ! हमारे भाई–बहनों ने अभी पाँच मिनट भी संकीर्त्तन नहीं किया होगा, कि श्री बाबा जी अपनी पर्णकुटी से बाहर आ गये एवं अपने आसन पर दर्शन देने हेतु विराजमान होकर अपने एक प्रिय शिष्य को आदेशित किये कि अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक, परम योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी का संकीर्तन करने वाले परम भाग्यशालियों को हमारे पास बुलाकर लाओ। वह शिष्य उनका आदेश पाकर दौड़ा–दौड़ा गया एवं हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि आप लोगों को बाबा जी अपने पास बुला रहे हैं। उनके करीब जाने पर हमारे आदरणीय भाई–बहनों ने हाथ जोड़कर प्रणाम निवेदित किया एवं अपने मुखारविन्दु से बोले, "आप लोग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के आश्रम से आये हैं ?" भाई–बहनों के स्वीकारोक्ति के बाद उन्होंने कहा, "आप लोग परम भाग्यशाली हैं जिनको ऐसे योगेश्वर की छाया में जीवन यापन करने का सौभाग्य मिला है। इस समय इस धराधाम पर परम पवित्र योग के एक मात्र अधिष्ठाता योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ही हैं। आप लोगों को योग एवं अध्यात्म की बातें क्या बतलाऊँ। अपने श्री गुरूदेव की आज्ञाओं का पालन तन–मन धन से करने का प्रयत्न करते रहो। यदि ऐसा करने का प्रयत्न करोगे तो लोक एवं परलोक दोनों विलक्षण आध्यात्मिक आनन्द करने वाला अवश्य–अवश्य बन जायेगा, इसमें रंच मात्र भी संशय मत समझना। आश्चर्य तो हमें यह होता है कि इतना बड़ा योगेश्वर एवं योग का अधिष्ठाता, क्या इतने निचले स्तर पर उतरकर भी योग प्रचार कर सकता है, जैसा कि श्री चन्द्रमोहन जी के व्यवहारिक जीवन में देखने एवं सुनने को मिल रहा है जिनके दर्शनों के लिये देवयोनि के देवतागण, सिद्धलोक के सिद्धगण एवं योगी पुरूष बार–बार प्रार्थना करते रहते हैं एवं लालायित रहते हैं क्या यह वही योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी है।" अश्रुपूरित नेत्रों से उन्होंने आगे कहा, "श्री प्रभुजी की अहैतुकी कृपा का वर्णन करने में मैं अपने को असमर्थ समझता हूँ। संसार में जहाँ कहीं भी योगाश्रम चल रहे हैं या योग की दुकान चल रही है सब जगह योग

रूपी हल्दी की गाँठ उन्हीं करुणा सागर द्वारा पहुँचायी जा रही है।" इतना कहने के बाद वे यह कहते हुए वाणी को विराम दिये, "मेरे प्रभु के आत्मांश लाड़ले ! आधे घण्टे तक अपना वही संकीर्तन सुना दो।" हमारे आदरणीय भाई–बहनों ने उनकी आज्ञा का पालन करके उन्हें आध्यात्मिक आनन्द प्रदान किया। तदुपरान्त उन्होंने प्रत्येक भाई–बहनों को काफी मात्रा में सूखे एवं ताजे फलों का प्रसाद दिया एवं एक नयी धोती में काफी मात्रा में सूखा फल बँधवाकर आराध्यदेव जी की सेवा में इस निवेदन के साथ सादर देने को कहा कि अपने गुरुभाई की यह भेंट स्वीकार करने की कृपा की जाय।

श्री प्रभुदरबार, श्री सिद्धयोग के वरिष्ठ साधक भाई–बहनों को इस रहस्य का बोध तो है ही, हमारे अनुज गुरुभाई–बहन भी इस तथ्य को समझ ले कि करुणानिकेतन, अहैतुकी कृपा सागर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज ने, खेचरी मुद्रा सिद्ध करने के लिये जंगल में कठोरतम साधना करने वाले देवरहा बाबा को, जो निराश से हो रहे थे, दर्शन देकर उन पर कृपा की एवं मात्र एक पल में खेचरी सिद्ध करा दी। खेचरी मुद्रा हठयोग की वह क्रिया है जिसे सिद्ध कर लेने पर साधक को आकाशगमन करने की शक्ति आ जाती है।

योगिराज श्री देवरहा बाबा की यह सत्य संकल्प वाणी कि योग की जितनी भी दुकान विश्व में चल रही है, सब दुकानों पर सामान श्री रामलाल जी महाराज का ही है, बिल्कुल ही स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। उन्हीं का आध्यात्मिक प्रकाश योगिराज श्री गुदड़ी बाबा में दिखायी दिया, जिसे लिपिबद्ध कर समझना एवं समझाना इस यौगिक लेख का मुख्य अंश है।

श्री गुदड़ी बाबा के नाम से सम्बोधित किये जाने वाले एक सिद्ध योगिराज सन् उन्नीस सौ तिरपन–चौवन में मथुरा–वृन्दावन में निवास करते थे। उस समय उनकी अवस्था बाह्री दृष्टि से सत्तर वर्ष के लगभग प्रतीत होती थी। वे साधारणतया पैदल ही यात्रा किया करते थे। इस समय ये महापुरुष इस नश्वर संसार में स्थूल रूप से विराजमान हैं या नहीं इसका स्पष्ट ज्ञान नहीं है। ये विचित्र वेष धारण किये रहते थे। ये फटे–पुराने, चकती लगे हुए एवं संसारिक दृष्टि से बहुत ही खराब, बेकार फेंकने लायक कपड़े पहने रहते थे। पता नहीं उनका क्या शौक था कि वे अपने दोनों पैरों के घुट्ठी (पैर का वह निचला हिस्सा जहाँ महिलायें पायल पहनती हैं) पर नयी–नयी एक–एक कलाई घड़ी हरदम बाँधे रहते थे। पोशाक तो उनका बहुत ही गरीब एवं गन्दे भिखारी की तरह था, परन्तु घड़ियाँ दोनों हरदम चमकती रहती थीं। ये अमूमन पैदल ही यात्रा किया करते थे। रिक्शा या गाड़ी वाले उनसे प्रार्थना कर अपने रिक्शा या गाड़ी पर बैठाना चाहते थे। वे जल्दी किसी की गाड़ी या रिक्शे पर बैठते नही थे। संयोगवशात् जिसके रिक्शे या गाड़ी पर बैठ जाते थे, उस दिन उसका भाग्य ही खुल जाता था। रिक्शे वाले की आमदनी और दिनों की अपेक्षा उस दिन पाँच गुनी से लेकर सात गुनी तक हो जाती थी। किसी

से भी कुछ माँगते नहीं थे। उनको लोग दान देने के लिए लालायित रहते थे परन्तु वे अपनी धुन के पक्के थे। किसी का विशेष आग्रह या श्रद्धा जानकर उसकी कोई वस्तु ग्रहण करते थे तो एक दो फर्लांग जाते–जाते वह सामान, किसी गरीब आदमी को दे दिया करते थे। वे सदैव मस्त रहा करते थे। किसी को कुछ कहना नहीं एवं किसी की कोई बात सुनना नहीं, यह उनका स्वभाव सा बन गया था।

एक दिन वे योगेश्वर भगवान कृष्ण की लीला स्थली मथुरा में मथुरा रेलवे स्टेशन जंक्शन पर प्लेटफार्म के बेन्च पर विद्यमान थे। एक सुपरफास्ट मेल ट्रेन जो प्लेटफार्म नम्बर एक पर खड़ी थी, एवं अपनी अगली यात्रा के लिये डिपारचर सिग्नल का इन्तजार कर रही थी। आदरणीय श्री गुदड़ी बाबा प्लेटफार्म नम्बर एक के बेन्च पर ही विराजमान थे। सुपरफास्ट मेल ट्रेन का डिपारचर हुआ, ट्रेन ने अपनी अगली यात्रा आरम्भ की। जब ट्रेन ने अपनी यात्रा धीरे–धीरे आरम्भ की उसी समय आदरणीय श्री गुदड़ी बाबा उस ट्रेन के एक डब्बे में चढ़ने लगे। संयोगवश वह डब्बा फर्स्ट क्लास का था एवं टी०टी० उस डिब्बे के गेट पर ही खड़ा था। उसने वेष–भूषा खराब देखते हुए श्री गुदड़ी बाबा से कहा कि यह फर्स्ट क्लास का डब्बा है नीचे उतरो। उन्होंने कहा कि हमारे पास यह टिकट है देखो। उसने बिना टिकट देखे ही उनको ढकेलते हुए ट्रेन से नीचे उतार दिया। आदरणीय श्री गुदड़ी बाबा जी किसी प्रकार गिरते–गिरते बचे एवं आकर उसी बेन्च पर कुछ धीरे–धीरे बोलते हुए बैठ गये, जिस पर पहले बैठे थे। गाड़ी आउटर सिग्नल तक पहुँचते–पहुँचते अपने आप रुक गयी। ड्राईवर लाख प्रयत्न कर रहा था परन्तु ट्रेन आगे नहीं बढ़ रही थी। उसने ट्रेन को पीछे चलाकर स्टेशन पर करना चाहा तो ट्रेन पीछे भी नहीं चल रही थी। वह करीब पैंतालिस मिनट तक प्रयत्न करता रहा परन्तु ट्रेन न तो आगे बढ़ रही थी एवं न पीछे चल रही थी। ड्राईवर के साथ गार्ड भी परेशान था एवं ये दोनों किंकर्तव्यविमूढ़ होकर एक दूसरे की तरफ देख रहे थे एवं सोच रहे थे कि क्या किया जाय। ट्रेन का गार्ड दौड़ा–दौड़ा स्टेशन पर हाफते काँपते पहुँचा एवं उसने स्टेशन मास्टर से निवेदन किया "आप तत्काल अगले स्टेशन एवं कन्ट्रोलर को इसकी सूचना दे देवें कि गाड़ी अपने आप बन्द हो गयी है। न आगे जा रही है और न पीछे स्टेशन की तरफ ही चल रही है। गाड़ी आउटर सिग्नल के पहले ही रुक गयी है। गाडी यहाँ से अर्थात् मथुरा जंक्शन स्टेशन से साफ दिखलाई भी दे रही है।" सुपरफास्ट मेल ट्रेन के गार्ड की बात को सुनकर स्टेशन मास्टर हक्का–बक्का रह गया। उसने अपने कार्यालय से बाहर आकर उस ट्रेन को देखा, जो आउटर सिग्नल के पूर्व खड़ी थी। वह उसे देखकर अपने कक्ष में कन्ट्रोलर एवं अगले स्टेशन को फोन करने के लिये वापस आ ही रहा था कि प्लेटफार्म की बेंच पर बैठे परम आदरणीय श्री गुदड़ी बाबा को देखा। वह अपने कक्ष में नहीं गया एवं श्री गुदड़ी बाबा के पास जाकर प्रणाम निवेदित किया। "उस

समय, जो स्टेशन मास्टर मथुरा जंक्शन पर कार्यरत था वह श्री गुदड़ी बाबा की आध्यात्मिक शक्तियों से अच्छी प्रकार परिचित था।" आदरणीय श्री गुदड़ी बाबा को प्रणाम निवेदित करने के बाद उसने प्रार्थना किया "महाराज जी ! आपको कहीं जाना तो नहीं है ?" श्री बाबा जी ने कहा, "जाना तो उसी ट्रेन से था, जो सिग्नल के पास खड़ी है। मैं ट्रेन पर चढ़ा तो उसमें उपस्थित टी०टी ने हमसे कहा कि नीचे उतरो फर्स्ट क्लास का डब्बा है। मैने फर्स्ट क्लास का टिकट उसको दिखलाया तो वह बिना हमारे टिकट को देखे ही हमको ट्रेन से नीचे ढकेल दिया। मै गिरते–गिरते बचा। मैंने कहा कि यदि मैं नहीं जा रहा हूँ तो तू भी मत जा।"

मथुरा जंक्शन के पुण्यात्मा स्टेशन मास्टर को यह समझते देर नहीं लगी कि यह सुपरफास्ट मेल ट्रेन योगिराज श्री गुदड़ी बाबा के ही संकल्प से रूकी है। उसने प्रार्थना किया कि महाराज आप, हमें आज्ञा प्रदान करने की कृपा करें, मैं ट्रेन को स्टेशन पर वापस बुलाता हूँ, आप उस पर सवार होकर जहाँ जाना चाहें जायें। श्री गुदड़ी बाबा ने कहा, "नहीं ! अब मुझे कहीं नहीं जाना है।" उसने प्रार्थना किया कि ट्रेन को चलने की आज्ञा प्रदान करें। उन्होंने कहा "पहले उस टी०टी० को बुलाओ जिसने हमें ट्रेन से नीचे उतारा है।" स्टेशन मास्टर समझ रहा था कि बाबा जी के सामने उपस्थित होने पर उसका कुछ अहित हो जायेगा। अतः उसने प्रार्थना किया, "महाराज जी ! वह अभी अबोध बच्चा है, वह आपको क्या समझे। मैं उसकी तरफ से आप से माँफी माँगता हूँ, अपराध क्षमा करने की कृपा करें।" स्टेशन मास्टर की श्रद्धायुक्त बातें सुनकर मुस्कराते हुए बोले, "आखिर तुम इतने क्यों परेशान हो, ट्रेन को वहीं खड़ी रहने दो।" स्टेशन मास्टर ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया, "महाराज जी ! जब तक ट्रेन आउटर सिग्नल पार नहीं कर पाती, हमारी ही जिम्मेदारी है।" उसकी प्रार्थना को सुनकर उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "अच्छा ट्रेन को आउटर सिग्नल के आगे करके रोक देते हैं।" उनकी बातों को सुनकर स्टेशन मास्टर ने प्रार्थना किया, "प्रभो ! अपराध क्षमा करने की कृपा करते हुए, ट्रेन को चलने का आदेश देने की कृपा की जाय।"

स्टेशन मास्टर हाथ जोड़े श्री गुदड़ी बाबा जी के सामने अपराधी की तरह खड़ा था एवं उनसे कई बार प्रार्थना किया कि बाबा जी ट्रेन को आगे की यात्रा का आदेश देने की कृपा की जाय। स्टेशन मास्टर की सरलता एवं श्रद्धा देखकर श्री गुदड़ी बाबा को दया आ ही गयी एवं बैठे ही बैठे उन्होंने अपना बायाँ हाथ गाड़ी की तरफ करके अपने मुखारबिन्दु से कहा, "जा रे जा, अब मुझे नहीं जाना है।" इसके बाद गुदड़ी बाबा ने स्टेशन मास्टर से कहा कि ट्रेन के ड्राईवर को खबर कर दो कि गाड़ी को चलाकर ले जाय। उनकी अमोघ वाणी सुनकर उनके साथ खड़े गाड़ी के गार्ड ने भी श्री बाबा जी के चरण स्पर्श किये एवं उसके बाद स्टेशन मास्टर को शुक्रिया अदा करके, ट्रेन जहाँ खड़ी थी वहाँ की यात्रा आरम्भ की एवं वहाँ पहुँच गया। गार्ड ने पूरी बात उस ट्रेन के ड्राईवर को बतलायी एवं कहा कि अब ट्रेन चलाओ। ड्राईवर ने तीन

चार बार ट्रेन की सीटी बजाई, सभी नीचे उतरे यात्री ट्रेन में सवार हो गये एवं उसके बाद ड्राईवर ने ट्रेन से आगे की यात्रा आरम्भ कर दी थी।

यद्यपि श्री गुदड़ी बाबा जैसे सिद्ध पुरुष अवश्य ही प्रशंसनीय एवं पूजनीय हैं परन्तु अपने श्री प्रभु दरबार की बात निराली ही है। हंस पक्षी का उदाहरण देते हुए महाकवि रहीम दास ने लिखा है :–

यद्यपि अवनि अनेक है, कूपवन्त सर ताल।
रहिमन मानसरोवरहि, मनसा करत मराल।।

❊ ❊ ❊

सम्पादकीय सूचना

'सिद्धयोग' पत्रिका का मुख्य उद्देश्य योग के शाश्वत् सिद्धान्तों को सरल भाषा एवं रीति से प्रचारित करना है। इसके लिए इसमें स्मृति–पुराण–श्रुति एवं योग साहित्य में वर्णित एवं यौगिक विषयों से संबंधित प्रेरणादायी सामग्री प्रकाशित की जाती है। किसी मत अथवा सम्प्रदाय, आचार्य परम्परा एवं उनके सिद्धान्तों का खण्डन–मण्डन करना इस पत्रिका की प्रकृति नहीं। पत्रिका के सम्पादन में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि जो भी लेख आदि सामग्री इसमें प्रकाशित हो वह पूर्णतः यौगिक विश्व को समर्पित हो और उससे पाठकगण एवं साधक उत्तरोत्तर लाभान्वित होते रहें।

हमारे इस प्रयास में प्रबुद्ध लेखकों का सदैव ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अतः लेखकों को चाहिए कि वे सिद्धयोग परम्परा से सम्बन्धित एवं योग विषयक शोधपूर्ण लेख स्वच्छ एवं सुस्पष्ट अक्षरों में कागज के एक ओर ही लिखकर निम्नांकित पते पर संप्रेषित करें–

ब्र. दासलाल शर्मा–सम्पादक
सिद्धयोग कार्यालय
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

आयुर्विज्ञान

दर्शनानन्द

मनुष्य जिस दिन से इस पृथ्वी पर आकर साँस लेता है तथा जिस दिन अन्तिम साँस छोड़ता है उस बीच की अवधि को आयु कहते हैं। महर्षि चरक ने सूत्र स्थान में लिखा है मानव जीवन के विषय में जो कुछ भी ज्ञातव्य अथवा ज्ञेय है उसका सम्पूर्ण ज्ञान अथवा जानकारी देने वाला शास्त्र आयुर्वेद कहलाता है। जीवन में हितकारी अहितकारी आहार सदाचार, सुख–दुःख आदि आयुर्वेद का प्रतिपाद्य विषय है। आयुर्वेद का लक्ष्य स्वास्थ्य का रक्षण तथा शरीर में रोग होने पर उसका शमन करना है। मानव शरीर पृथ्वी, जल, तेज आदि महाभूतों का संघात है, महाभूतों का ही एक रूप वात, पित्त एवं कफ के रूप में शरीर में विद्यमान है जब तक यह समानावस्था में रहते हैं स्वास्थ्य ठीक रहता है इनमें विषमता आ जाने पर ही रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आहार–विहार उचित न होने पर रोग जन्म ले लेते हैं। जब वात, पित्त आदि सम रहते हैं तो ये ही शरीर के धारक कहलाते हैं और विषमता आने पर ये ही दोष कहलाते हैं।

शरीर में दस प्रकार के वायु, पाँच प्रकार के कफ तथा पाँच ही प्रकार के पित्त होते हैं। भिन्न–भिन्न स्थानों पर इनके अलग–अलग कार्य होने के कारण (प्रकार) नाम भी अलग–अलग हो जाता है। वक्षस्थल कफ का स्थान है, मुख्य रूप से आमाशय में रहता है, वहीं से ही ऊर्ध्व भागों में गमन करता है। शरीर के सन्धि स्थानों पर भी रहता है, इस की विकृति से दमा, गठिया आदि रोग होते हैं। पित्त विशेष रूप से पित्ताशय आमाशय आदि स्थानों पर रहता है। पाचन क्रिया में इसका विशेष महत्व रहता है। शरीर में कफ की मात्रा अधिक हो जाने पर अनेक रोग घेर लेते है। दमा, खांसी, नजला आदि कफ के ही परिणाम हैं। यौगिक क्रियाओं में, कुञ्जल तथा धौति कफ निवृत्ति के लिये अचूक साधन हैं। पित्त की शान्ति के लिये भी कुञ्जल विरेचन और धौति क्रिया उत्तम साधन है।

आयुर्वेद में अस्सी प्रकार के वात–रोगों का वर्णन मिलता है। वायु जब उग्र हो जाती है तो शरीर में अत्यधिक वेदना होने लगती है। वायु ही उग्र होकर कफ और पित्त के स्थानों पर जाकर स्त्रोतों में पीड़ा पहुँचाती है, शरीर जीर्ण होने लगता है –कहा जाता है कि पित्त और कफ दोनों पंगु हैं जिधर वायु ले जाती है उधर ही दोषों को उग्र कर उपद्रव कर देती है। जिस प्रकार से बादलों को हवा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती है ऐसे ही दोषों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर वायु ले जाती है।

शरीर में कोई भी बड़ा रोग सहसा नहीं होता पहले दोष शरीर में संचित होते रहते हैं और समय पाकर परिणाम दिखाते हैं। संचित दोष अनुकूल ऋतु पाकर प्रभाव दिखाते हैं। वर्षाकाल में वायु का प्रकोप होता है। इसी तरह से बुढ़ापे में वायु का प्रकोप होता है। रात्रि एवं दिन के अन्तिम भाग में वायु का प्रकोप होता है। इसीलिये गैस्टिक Gastric के आतुर सायंकाल

प्रभावित रहते हैं। ग्रीष्म काल में देशकाल की उष्णता के कारण पित्त का स्वभावतः प्रकोप होता है। आयु के मध्य भाग में, दिन में और रात्रि के मध्यकाल में पित्त का प्रकोप होता है। संचित हुआ कफ बसन्त ऋतु में श्लेष्मिक उपद्रव उत्पन्न करता है। बसन्त श्लेष्मा (कफ) का प्रकोपक होता है इसलिये बसन्त ऋतु में धोति, वस्ति, कज्जल आदि कर्म करने चाहिये ताकि दोषों का निःसारण हो जाये। आयुर्वेद में दोषों को दूर करने के लिये पञ्च कर्म का विधान बताया गया है तथा योग में षट्कर्मों का विधान है। आयुर्वेद शास्त्र में स्वस्थ वृत्त अध्याय के अन्तर्गत स्वास्थ्य को ठीक रखने के उपाय बताये गये हैं। ऋतु, देशकाल के अनुसार आहार विहार करने वाला व्यक्ति स्वस्थ रहता है। विपरीत आचरण से रोगी हो जाता है। मनुष्य को चाहिये कि जो आहार अनुकूल न हो उसे संशोधित कर अनुकूल बना ले।

औषधियों में अद्‌भुत गुण विद्यमान है। कौन से रोग के लिये कौन सी औषधि ग्राह्य है यह आयुर्वेद बताता है योगासनों का नियमित अभ्यास करने से वात, पित्त एवं कफ सम अवस्था में रहते हैं शरीर में ठीक प्रकार से रक्त संचार होता है जिससे शरीर के सभी संस्थान ठीक प्रकार से काम करते हैं। इस तरह से रोगों को पनपने का अवकाश ही नहीं मिलता।

मानसिक रोगों को दूर करने के लिये जहाँ ध्यान योग (Meditation) के महत्व को समझा जा रहा है वहीं मानस रोगों की निवृत्ति के लिये महर्षि चरक ने अष्टाङ्‌योग एवं समाधि का निरूपण किया है। उन्होंने माना है कि रजोगुण एवं तमोगुण के कारण ही मन में विक्षिप्तता आती है जिसके निवारण का उपाय योग है। इस प्रकार से महर्षि चरक ने योग समाधि को आत्म साक्षात्कार का मुख्य उपाय माना है।

योग साधक को आयुर्विज्ञान को भी जानना जरूरी है क्योंकि योग मार्ग में पहला विघ्न व्याधि है। इसलिये साधक के लिये आवश्यक है कि वह आयुर्विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्तों को भी समझ ले। आयुर्विज्ञान के ज्ञान द्वारा मनुष्य पूर्ण रूप से अपने को स्वस्थ रख सकता है तथा अन्यों को भी इसका ज्ञान बाँट सकता है। शरीर विज्ञान के ज्ञान से ही मनुष्य लोक–परलोक में सुख पाता है।

आयुर्वेद ज्ञान को शाश्वत ज्ञान कहा गया है। भगवान् धन्वन्तरी ही आयुर्वेद के प्रदाता माने जाते हैं।

शोक संवेदना

सूचित करते हुये दुःख हो रहा है कि १६ नवम्बर को श्री सुल्तान सिंह का देहावसान हो गया। वे इन दिनों अपने गाँव (अलुपुर कुराना) गये हुये थे। उन्होंने श्री गुरुदेव के समय से ही आश्रम में रहकर सेवा की थी। श्री प्रभु जी से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति दें तथा परिवारिजनों को इस दुःख को सहन करने की शक्ति दें। सिद्धयोग परिवार उनके निधन पर हार्दिक शोक व्यक्त करता है।

–सम्पादक

वह फरिस्ता कौन था ?

विजय सिंह

इस पाँच नवम्बर को हमारे अनुज विनय सिंह का देहावसान हुआ। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की अहैतुकी कृपा केवल अपने दीक्षित बालकों पर ही नहीं हुआ करती अपितु जहाँ भी उनके संस्कारियों के संस्कार जुड़े रहा करते हैं, वहाँ कृपा करते ही करते हैं।

यह सत्य है कि सद्गुरू बिना आध्यात्मिक जीवन का लाभ नहीं होता। जगत के आवरण को जीव मात्र अपने पौरुष से काटकर निज चैतन्यमय स्वरूप को उपलब्ध हो जाय यह सम्भव नहीं है। सतगुरू में ईश्वर शक्ति करूणा सहित सन्निहित है। उनके कृपा से जीव में सशक्त शक्ति का उद्वेग हुआ करता है।

सन् १९९० से अनुज नाना व्याधियों से ग्रस्त होता गया था। श्री प्रभुजी जिन दिनों स्थूल रूप से विद्यमान थे। बहन सुश्री योगिनी उमाजी ने एक बार श्री प्रभुजी के सन्मुख मुझसे प्रश्न किया–भैया ! तुम्हारा भाई श्री प्रभुजी के पास नहीं आता। इस प्रश्न का उत्तर मैं क्या देता, मैं मन में सोचता हुआ कि जिन्हें प्रभु स्वयं बुलाते हैं वही उनके पास आ पाते हैं, प्रत्यक्षतः कहता कि कछवा में जब श्री गुरुदेव भगवान का योग प्रचार कार्यक्रम होता है तो वहीं वह दर्शन कर जाता है। यह सत्य भी था।

एक दिन पिजिआई में अचानक हृदय गति उसका रूक गया। उपस्थित स्वजनों एवं डाक्टरों के दुआ दवा से पुनः प्राण संचारण हुआ। डाक्टरों ने उसे वैंटलेटर (कृतिम श्वांस) पर रखा। उस अवस्था में अनुज ने कागज–कलम लाने का इशारा किया। लिखकर पूछा–वहाँ वह कौन था ? लोगों उस समय वहाँ मौजूद लोगों के नाम बताते रहे। उसने इन्कार करते हुये पूछा–वह फरिस्ता कौन था ? जिसने खतम हुये खेल को पुनः शुरू कर दिया। अब इस शरीर का काम समाप्त है। मृत्यु से पहले इन्सेंटिव केयर में जब मैं उसे देखने गया उस समय यंत्र द्वारा श्वांस दिया जा रहा था। शरीर जर्जर हो चुका था। परन्तु उसकी चेतना पूर्ण थी। वह हमें देख भावुक हो उठा। मैंने कहा– खूब ! श्री प्रभुजी के चरण कमलों का चिंतन करो। जो तुम्हारे कल्याण के लिये होगा वो कृपाधन करेंगे। उसने स्वीकार करते हुये चिन्तन हेतु भावपूर्ण ढंग से आँखे बन्द कर लीं थी। ऐसा आभास हुआ अब कुछ ही दिनों की बात है।

सद्गुरू की दृष्टि मात्र अपने शिष्यों पर ही नहीं उनसे जुड़े उनके संस्कारियों पर भी रहा करती है।

एक बार श्री गुरुदेव भगवान के सन्मुख कछवा मण्डल के साधक–गण संकिर्तन कर रहे थे और गा रहे थे–

मेरे सद्गुरू से बढ़कर कोई भी नहीं
देखने की इच्छा हो तो देख जो सही।
गुरूजी हमारे सबसे न्यारे

जन-जन की आँखों के तारे।
सब पर कृपा करते हैं
केवल शिष्यों पर ही नहीं।
देखने की इच्छा हो तो देख लो सही।।

भजन समाप्त होने पर श्री सद्गुरू भगवान ने कहा– भजन में गाये भाव बिल्कुल–बिल्कुल ठीक हैं। देखो ! वो कृपाधन श्री प्रभुजी सभी पर अहैतुक कृपा रखते हैं। नहीं समझे ! तुम सबको कुछ घटनायें सुनाता हूँ।

एक बार ऋषिकेश में योगेश्वर श्री प्रभुरामलाल जी महाराज विराजमान थे। वर्षा ऋतु थी। ध्यानी सतसंगी सन्मुख प्रभु के बैठे हुये थे तभी श्री प्रभुजी अपने दायें पैर को अचानक तेजी से जमीन पर पटक दिये। ध्यानियों ने पूछा प्रभुजी यह क्या बात है। श्री प्रभुजी बोले बात क्या है, पैर शून्य हो रहा था अतः उसे सीधा कर लिया। परन्तु ध्यानियों ने जब अत्यन्त आग्रह किया तब वे बोले ध्यान में देखो और फिर अपने संदेह का निवारण प्रत्यक्ष कर लो। ध्यानियों ने देखा गंगा जी के बाढ़ का विप्लव उसमें डूबते लोग, गिरते घर, बहते जानवर। अचानक गंगा के तट पर बसे एक ग्राम का दृश्य आधा ग्राम जल प्रवाह में तहस–नहस हुआ। उसी ग्राम का एक सद्गृहस्त अतिभाव से भगवान का स्मरण करता हुआ अपनी रक्षा की गुहार लगा रहा था। तभी ऋषिकेश में बैठे–बैठे श्री प्रभुजी ने अपने दायें पैर को पटका। ध्यानियों ने देखा वह पर्वताकार पैर ठीक उस सदगृहस्त के घर के सामने अड़ गया जिससे गंगा की धारा टकराकर दूसरी ओर मुड़ती काटती चली गयी। ध्यान में ही उस स्थान का अन्वेषण कर कुछ ध्यानियों ने वहाँ जाकर सारी घटना विवरण की पुष्टी की थी। ऐसी होती है योग में सामर्थ्य।

श्री गुरुदेव भगवान अपनी गाथा एक महात्मा ने ऐसा किया कहकर सुनाया करते थे। उन्होनें इस घटना के बारे में बताते हुऐ बोले–लल्ला ! एक महात्मा कहीं ग्राम में बैठे थे अचानक उनकी दृष्टि में आया– घनघोर जंगल में एक साधू झरने पर स्नान करके सूर्य का तर्पण करने जा रहा था तभी एक शेर जो घात लगाकर बैठा हुआ साधू का शिकार करने हेतु उछला परन्तु वह गिरा कहीं और दिशा में। क्योंकि ग्राम में बैठे योगिराज ने अपने दायें हाँथ को ऊपर उठा कर उस साधू की वहीं से रक्षा कर दी थी। उनके हाथ से निकले प्रकाश ने शेर की उछाल की दिशा को ही बदल दिया था।

सद्गुरू का नित्य स्वरूप हम सभी देख नहीं पाते। साधक को भी जो दीख पड़ता है वह उनका स्थूल रूप न कि उनका परमरूप। संस्कार से रंगे आँखों में अपनी–अपनी आसक्ति के अनुरूप गुरुदेव के दर्शन होते हैं।

❊ ❊ ❊

मत्स्येन्द्रासन

वामोरुमूलार्पित दक्षपादं,
जानोर्वहिर्वेष्ठितवामपादम्।
प्रगृध्य परिवर्तितांगं
श्रीमत्स्येन्द्रनाथोदितमासनं स्यात्।।

विधि—पद्मासन की विधि से अपनी बाई जंघा पर दाहिने पैर को जमाये तदनन्तर उस बायें पैर को उठाकर अपने दाहिने पैर के घुटने के ऊपर से लेकर दाहिनी ओर जमा कर रख लें, उसके बाद अपने दाहिने हाथ को घुमाकर उस ही दाहिनी ओर जमे हुए बायें पैर के घुटने को बायीं ओर लाकर दृढ़ता से उसी पैर के पंजे को पकड़ कर वहीं दृढ़ता से हाथ को जमाये रखें और सीधा बैठें इसी का नाम मत्स्येन्द्रासन है। इसी विधि से पैरों को बदल कर बायें पैर को दाहिनी जंघा पर रख कर व दाहिने पैर को बायें पैर के घुटने के पास से खड़ा पंजा लगाकर बायीं ओर जमा दें उसके बाद अपने बायें हाथ को उस दाहिने जमे हुए पैर दाहिनी ओर से घुमा कर उस दाहिने ही पैर के पंजे को दृढ़ता से पकड़ कर हाथ वहीं जमाये रखें, इस प्रकार यह आसन दोनों ओर से बदल-बदल कर किया जा सकता हैं इस आसन को करते हुए अपनी दृष्टि भ्रूमध्य रखनी चाहिये।

समय—पहली बार ही अभ्यास करने वाले को भद्रासन की तरह उसे भी १० या २० सैकन्डों से ही आरम्भ करना चाहिये, बाद में पाँच-पाँच सैकन्ड बढ़ा कर अभ्यास को ऊँचा बढ़ाया जा सकता है।

लाभ—इस आसन की विधि इस प्रकार की है कि जिसमें मेरुदण्ड स्वाभाविक ही सीधा रहता है, मेरुदण्ड के सीधे रहने से सुषुम्ना की गति स्वतः ही हो जाती है। अतः यह आसन मन की एकाग्रता का दाता है। कुण्डलिनी प्रबोध करने वाला है। पीठ में होने वाले व उदर में होने वाले सभी बात विकारों का नाशक है, जठराग्नि का वर्धक है। आँतों को पूरा-पूरा बल देता है। शौच शुद्धि के लिये भी उत्तम है।

गोरक्षासन

जानयोरन्तरे पादावुत्तानाव्यक्त संस्थितौ।
गुल्फौ चासाद्य हस्ताभ्यां मुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः।।
कण्ठ संकोचनं कृत्वा नासाग्रम वलोकयेत्।
गोरक्षासन मित्याह योगिनां सिद्धि कारणम्।।

विधि—प्रथम सीधे बैठकर अपने दोनों पैरों के पादतल व एड़ियों को मिला लें व उसके बाद दोनों पैरों के पंजों को उलट कर सीवनी भाग में लिंग नाल के नीचे ले जाकर छुपा लें। तदनन्तर अपने हाथों को पीठ की ओर से लाकर व पटों के नीचे निकाल कर सामने दीखने वाली दोनों एड़ियों को पकड़ लें अर्थात दाप लें। इसी का नाम गोरक्षासन है।

समय—पूर्ववत् सैकन्डों से अभ्यास को

बढ़ावें व अपने शरीर के बलावल को देखकर सैकन्डों के हिसाब से ही आगे बढ़ायें।

लाभ—मन की एकाग्रता, इन्द्रिय जय, कुण्डलिनी जागरण व वीर्य विकारों के लिये उत्तम है।

पार्वती आसन

विधि—सीधे बैठकर अपने पैरों को मोड़कर घुटनों के पास लाकर इस प्रकार मिलाओ कि दोनों पैरों के पास तल, एड़ी, पादतल व पैरों के पंजे इस प्रकार मिल जायें कि देखने वालों को यह मालूम हो कि जैसे परस्पर चिपकाये हुए हैं, उसके बाद दोनों एड़ियों को सीवनी में ले जाओ व पैरों के तलवे व पंजे मिले हुए बाहर की ओर सामने दिखलायी देते रहें। ऐसा करने से घुटने स्वतः ही फैल जायेंगे, घुटनों पर अपने दोनों हाथ जमाकर रख दें, मेरुदण्ड को सीधा रखें। इसी का नाम पार्वती आसन है।

समय—साधारण रखें।

लाभ—अवरोधक है। वीर्य वाहिनी नाड़ी सिकुड़ती है, ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाले सभी स्त्री-पुरुषों के लिये पूर्ण लाभप्रद है।

गोमुखासन

असव्ये पृष्टपार्श्वे तु वाम गुल्कं नियोजयेत्।
सव्ये सव्यं तथा गुल्कं गोमुखं गोमुखाकृति।।
ऊर्ध्वतो दक्षिणं हस्त पृष्ठ देश नयेत्तथा।
अधस्तात्सव्य हस्तं तु तर्जन्या तर्जनीम्प्रियात्।।

विधि—दाहिने पृष्ठपार्श्व नितम्ब भाग (चूतड) के नीचे बायें पैर की एड़ी को व बायें नितम्ब के नीचे दाहिने पैर की गाँठ अर्थात् टकने सहित एड़ी को जमा कर दाहिने हाथ के शिर की ओर से व बायें हाथ को नीचे की ओर पीठ पर से ऊपर की तरफ बढ़ाकर दाहिनी तर्जनी अंगुली से बायें हाथ से तर्जनी को दृढ़ता से पकड़ लें व दृढ़ भाव से बैठे रहें। इसी का नाम गोमुखाकृति का रूपक होने से गोमुखासन है।

समय—शनैःशनैः अभ्यास बढ़ा लेना चाहिये।

लाभ—मेरुदण्ड सीधा रहने से मन की एकाग्रता को बढ़ाता है। स्नायु दौर्बल्य को दूर करता है।

* * *

अपने आपको पूर्ण बनायें !

स्वामी विवेकानन्द

क्या यह लज्जा का विषय नहीं कि एक बार तो हम अपने मनुष्यत्व की, अपने देवता होने की बड़ी–बड़ी बातें करें, हम कहें कि हम सर्वज्ञ हैं, सब कुछ करने में समर्थ हैं, निर्दोष हैं, पापहीन हैं और दुनिया में सबसे निस्वार्थी हैं, और दूसरे ही क्षण एक छोटा सा पत्थर भी हमें चोट पहुँचा दे, किसी साधारण से साधारण मनुष्य का जरा सा क्रोध भी हमें जख्मी कर दे और कोई भी चलता राहगीर 'हम देवताओं' को दुःखी बना दे ! यदि हम ऐसे देवता हैं, तो क्या ऐसा होना चाहिये ? क्या दुनिया को दोष देना उचित है ? क्या परमेश्वर, जो पवित्रतम और सबसे उदार है, हमारी किसी भी चालबाजी के कारण दुःख में पड़ सकता है। यदि तुम सचमुच इतने निःस्वार्थी हो, तो तुम परमेश्वर के समान हो। फिर कौन सी दुनिया तुम्हें चोट पहुँचा सकती है ? सातवें नरक में से भी तुम बिना झुलसे, बिना स्पर्श हुए निकल जाओगे। पर यह बात ही कि तुम शिकायत करते हो और बाहरी दुनिया पर दोष मंढ़ना चाहते हो, बताती है कि तुम्हें बाहरी दुनिया का बोध हो रहा है, और इसी से यह स्पष्ट है कि तुम वह नहीं हो, जैसा अपने को बतलाते हो। दुःख पर दुःख रचकर और यह मान लेकर कि दुनिया हमें चोट पहुँचाये जा रही है, तुम अपने अपराध को अधिक बड़ा बनाये जा रहे हो और चीखते जाते हो, 'अरे बाप रे, यह तो शैतान की दुनिया है ! यह मनुष्य मुझे चोट पहुँचा रहा है, वह मनुष्य मुझे चोट पहुँचा रहा है'–आदि आदि। यह तो दुःख पर झूठ का रंग चढ़ाना हुआ।

अपनी चिन्ता हमें स्वयं करनी है। इतना तो हम कर ही सकते हैं। हमें कुछ समय तक दूसरों की ओर ध्यान देने का ख्याल छोड़ देना चाहिये। आओ, हम अपने साधनों को पूर्ण बना लें, फिर साध्य अपनी चिन्ता स्वयं कर लेगा। क्योंकि दुनिया तभी पवित्र और अच्छी हो सकती है, जब हम स्वयं पवित्र और अच्छे हों। वह है कार्य और हम हैं उसके कारण। इसलिए आओ, हम अपने आप को पवित्र बना लें ! आओ अपने आपको को पूर्ण बना लें !

SIDDHYOG Regd. No. L.Ag. 008 January, 2005

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सींवाई (फतेहाबाद) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री

191-उमाशंकर भारद्वाज
B-65 बालाजीपुरम् अलबतिया रोड,
शाहगंज आगरा (उ०प्र०) 282010

देहोऽपि ममताभाक् चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत् प्रियः।
यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिञ्जीविताशा बलीयसी॥
तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम्।
तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम्।

(श्रीमद्भागवत १०/१४/५३–५४)

अर्थात्—देह के गलित होने पर भी जीने की जो आशा बनती है, वह आत्मा की प्रियता के कारण ही है, क्योंकि चराचर जगत् का प्रिय आत्मा ही है। प्रेम के द्वारा प्रियतम परमात्मा की उपलब्धि होने पर प्रेमी भी प्रिय में मिल जाता है। उसकी स्वतः सत्ता नहीं रहती।

प्रकाशक एवं मुद्रक : विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, ताजगंज, आगरा व राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सईंवाई (एन) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक–आचार्य ब्र.(डॉ.) दाऊलाल शर्मा